कुणाल

[ऐतिहासिक नाटक]

लेखक

नाट्य-सुधा, भीम-प्रतिज्ञा, नाट्यकथामञ्जरी

आदि के प्रणेता

कैलाशनाथ भटनागर, एम० ए०

प्रोफ़ेसर, सनातन धर्म कॉलिज, लाहौर

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, लाहौर

दूसरा संस्करण २०००] सन् १९३७ [मूल्य १)

Published by
The Manager,
The Indian Press. Ltd.,
Lahore-Branch,
Ganpat Road,
Lahore.

Printed by .
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

परिचय

महाराज अशोक के पुत्र कुमार कुणाल किस प्रकार अपनी विमाता के कुचक्र से अन्धे किये गये, इसका विस्तृत वृत्त बौद्ध-ग्रन्थों में मिलता है। उसी मार्मिक आख्यान को लेकर श्रीयुत कैलाशनाथ भटनागर, एम० ए०, ने इस नाटक की रचना की है। यह नाटक विशेषतः छात्रों के लिए लिखा गया है, इससे इसमें आदर्श-प्रतिष्ठा का लक्ष्य प्रधान है। कुणाल के शील की जो झलक प्रथम अंक में मिलती है वह क्रमशः अधिक स्पष्ट और उज्ज्वल होती हुई अन्त में परम उत्कर्ष पर पहुँच एक दिव्य ज्योति के रूप में जगमगा उठती है। ऐतिहासिक वृत्त को मार्मिकता और सजीवता प्रदान करने के लिए नाटकों में कल्पना का पूरा सहारा लेना पड़ता है। कथोपकथन तो सारा कल्पित होता ही है, कुछ पात्रों और घटनाओं की भी उद्भावना नाटककार को करनी पड़ती है। यह देखकर प्रसन्नता होती है कि 'कुणाल' में जो संवाद दिये गये हैं तथा जिन कल्पित पात्रों और घटनाओं का समावेश किया गया है वे उस काल की सामाजिक परिस्थिति के अनुकूल हैं। अंत में जो तिष्यरक्षिता का प्राणदंड से मुक्त होना दिखाया गया है वह भी, नाटककार के अनुसार, निराधार नहीं है।

भटनागरजी ने अपनी इस नाटक-रचना में सफलता प्राप्त की है, इसमें सन्देह नहीं।

दुर्गाकुण्ड, काशी
१५—३—३६

रामचन्द्र शुक्ल
(प्रोफ़ेसर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

— —

भूमिका

प्रस्तुत नाटक की सामग्री 'दिव्यावदान' के 'कुणालावदान' से ली गई है। सौतेली माता का सौतेले पुत्र के प्रति कितना कठोर व्यवहार हो सकता है, पुत्र उस कठोर व्यवहार को कैसे सहन करता है और परिणाम क्या निकलता है, यही इस नाटक का कथानक है।

सम्राट् अशोक की अग्रमहिषी (महारानी) असन्धिमित्रा का देहान्त ई० पू० २४० में हो गया। इनको एक दासी तिष्यरक्षिता थी। सम्राट् और तिष्यरक्षिता दोनों परस्पर प्रेम-पाश में बँध गये। लगभग तीन वर्ष के अनन्तर (ई० पू० २३६ में) सम्राट् ने तिष्यरक्षिता को अपनी अग्रमहिषी बना लिया। इस समय रानी पद्मावती का पुत्र धर्मविवर्धन कुणाल युवराज था। अन्तःपुर में प्रवेश करते ही महारानी तिष्यरक्षिता का कुमार कुणाल से मनोमालिन्य हो गया। मनोमालिन्य का कारण वही था, जो 'पूर्ण भक्त' और 'रानी लूणा' का था। इस प्रकार के कथानक प्रायः प्रत्येक साहित्य में दृष्टिगोचर होते हैं। इस कथानक के शृंगार-रस-पूर्ण अंश को मैंने सर्वथा परिवर्तित कर दिया है। अतएव यह नाटक विद्यार्थियों के लिए भी उपयोगी है।

रानी लूणा पूर्ण भक्त को नगर से निर्वासित कराती है और उसके हाथ-पैर कटवाकर कुएँ में फेंकवा देने का आदेश देती

है ; तिष्यरक्षिता भी तक्षशिला में विद्रोह होने का समाचार पाकर कुमार कुणाल को वहाँ भिजवा देती है जिससे विद्रोहियों द्वारा उनका प्राणान्त हो जाय। कुमार की आयु इस समय लगभग २८ वर्ष की थी। इनका जन्म लगभग ई० पू० २६४ में हुआ था। सौभाग्यवश कुमार कुणाल विद्रोह शान्त कर लेते हैं और तिष्यरक्षिता का मनोरथ अधूरा रह जाता है। इसी समय सम्राट् अशोक पुरीषोदावर्त रोग से पीड़ित हो जाते हैं। कोई औषध लाभ नहीं पहुँचाती। वैद्य निरुपाय हैं। अग्रामात्य राधागुप्त कुमार कुणाल को तक्षशिला से बुलाने का विचार करते हैं। तिष्यरक्षिता की इच्छा नहीं थी कि कुमार बुलाये जायँ। वह सम्राट् की चिकित्सा का भार अपने ऊपर लेती है और अन्त में सम्राट् को नीरोग कर लेती है। सम्राट् ने प्रसन्न होकर तिष्यरक्षिता को एक वर देना चाहा। उसने एक सप्ताह का राज्य माँगा। महाराज मान गये। तिष्यरक्षिता इन दिनों तक्षशिला के प्रधान अमात्य के नाम, सम्राट् की ओर से, एक पत्र भेजती है। उसमें कुमार कुणाल को राजद्रोही ठहराकर, नेत्रहीन करके, नगर से निर्वासित किये जाने का आदेश था। पत्र में लिखे हुए दण्ड की सूचना कुमार को मिलती है तो वे उसे सहने के लिए सहर्ष उद्यत हो जाते हैं, यद्यपि सब अमात्य आदि इसका विरोध करते हैं। कुमार का आदर्श अत्यन्त उच्च है। वे कहते हैं—"एक भिखारी जब भगवान् के नाम पर कोई वस्तु माँगता है, तो दयालु लोग उसे वह वस्तु दे

देते हैं। मैं भगवद्भक्त हूँ और पितृभक्त भी। जब पिताजी के नाम पर कोई मेरे नेत्र लेना चाहता है, तो मुझे इसमें कुछ आपत्ति नहीं।" कुमार अपने नेत्र स्वयं फोड़ लेते और नगर-त्याग कर देते हैं। पत्नी काञ्चनमाला उनके साथ जाती है। अन्तिम अङ्क में जब रहस्य खुलता है, तब सम्राट् अशोक को तिष्यरक्षिता पर प्रचण्ड क्रोध आता है। वे उस राक्षसी को जन्तुगृह में क्षुधार्त्त सिंह के सामने डाल देने का दण्ड सुनाते हैं। इसकी सूचना पाकर कुमार कुणाल तिष्यरक्षिता को क्षमा करवाने का प्रयत्न करते हैं। वे कहते हैं—"पिताजी! मैं यह अपयश सहन नहीं कर सकता कि पुत्र के कारण माता को प्राणदण्ड हुआ। आप यह समझें कि युद्ध में इसके नेत्र जाते रहे। तीरों ने इसके नेत्रों को अपना लक्ष्य बना लिया।" जब सम्राट् किसी प्रकार क्षमा नहीं करते, तो कुमार स्वयं प्राण त्याग देने के लिए क्षुधार्त्त सिंह के पिंजड़े की ओर लपकते हैं, परन्तु सम्राट् उन्हें पकड़ लेते हैं। इस पर कुमार कहते हैं—"पूज्य पिताजी! यदि आप माता को क्षमा न करेंगे तो मेरा भी यहीं अन्त हो जायगा। यदि आप मुझे जीवित रखना चाहते हैं, तो मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए। माता तिष्यरक्षिता को मुक्त कर दीजिए।" विवश होकर सम्राट् को कुमार कुणाल की प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ती है। तिष्यरक्षिता मुक्त कर दी जाती है। वह अपनी करनी पर पश्चात्ताप करती है और भगवान् से प्रार्थना करती है कि कुमार कुणाल को नेत्र प्राप्त हो जायँ। इस समय अशोकाराम विहार के सङ्घस्थविर महात्मा यश आ

पहुँचते हैं। वे कहते हैं, "भगवान् बुद्ध ने मुझे दर्शन देकर कहा है कि कुमार की कुछ चिन्ता मत करो। उसका हित हमारे हाथ है।" तत्काल आकाश से पुष्पवृष्टि होती है और कुमार कुणाल पुष्पों को आँखों से लगा लेते हैं। इससे नेत्र-ज्योति प्रकट हो जाती है। कुमार सब गुरुजनों के दर्शन पाकर प्रणाम करते और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। सम्राट् अशोक प्रसन्न होते हैं कि मेरा पुत्र देव-परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया।

इस नाटक की कथा को मनोरञ्जक बनाने के लिए कई एक परिवर्तन किये-गये हैं। सबसे प्रधान परिवर्तन है इसकी दुःखान्त कथा को सुखान्त बनाना। मूल कथा में सम्राट् अशोक तिष्य-रक्षिता को जन्तुगृह में छोड़कर जला देते हैं तथा तक्षशिला के निवासियों को विशेष रूप से दण्ड देते हैं। "**यावद् राज्ञाशोकेन तिष्यरक्षिता असर्पितेन जन्तुगृहं प्रवेशयित्वा दग्धा तक्षशिलायाश्च पौराः प्रघातिताः।**" हुअन-साँग के अनुसार मुख्य-मुख्य मन्त्रियों में से कुछ को मृत्युदण्ड दिया गया, शेष को देश से निर्वासित कर दिया गया। वे अपने कुटुम्ब सहित कुस्तान (Khotan) में जाकर बस गये*।

कुमार कुणाल के चरित्र को उच्च बनाने के लिए मैंने यह आवश्यक समझा कि कुमार द्वारा तिष्यरक्षिता का अपराध क्षमा कराया जाय। ऐसा करने में ऐतिहासिक सामग्री मुझे सहायता

* युअन-च्वाँग—वाटरज़, भाग २, पृष्ठ २६३; एंशंट खतन, सर स्टाइन कृत, पृष्ठ १६४।

देती है। 'दिव्यावदान' के 'कुणालावदान' (पृष्ठ ३९७) में ही लिखा है कि सम्राट् अशोक ने एक बार बोधिवृक्ष के लिए विशेष रत्न आदि से युक्त उपहार भेजा। उस समय सम्राट् अशोक की अग्रमहिषी तिष्यरक्षिता थी। उसने सोचा कि महाराज मुझपर प्रेम तो करते हैं किन्तु जो विशेष रत्न हैं वे बोधि-वृक्ष के लिए भेज देते हैं। उसने मातङ्गी से कहा—क्या तुम मेरी सौत 'बोधिवृक्ष' का नाश कर सकती हो? उसने कहा—यत्न करूँगी। मातङ्गी ने मन्त्र-जप आदि से ऐसा किया कि वृक्ष सूखने लग गया। यह सूचना पाकर सम्राट् अशोक मूर्च्छित हो गये। चेत होने पर वे कहने लगे कि इस वृक्षराज के नष्ट हो जाने पर मेरे प्राण भी न बचेंगे। सम्राट् को शोकाकुल देखकर तिष्यरक्षिता ने कहा—देव! बोधिवृक्ष न रहने पर आप मुझसे अधिक प्रेम करने लगेंगे। सम्राट् ने कहा—वह स्त्री नहीं, वरञ्च बोधिवृक्ष है जहाँ भगवान् को ज्ञान प्राप्त हुआ था। इस पर तिष्यरक्षिता ने मातङ्गी से कहकर बोधिवृक्ष को पुनः सञ्जीवित करा दिया। यह सूचना पाकर सम्राट् अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने बोधिवृक्ष का महान् सत्कार किया। 'महावंश' के अनुसार बोधिवृक्ष के सञ्जीवित हो जाने के एक वर्ष पश्चात् सम्राट् अशोक का देहान्त हो गया—

" In the 12th year from that period the beloved wife of that monarch, Asandhimitrā who had identified herself with the faith of Buddha, died. In the 4th year from

(her demise), the Rājā Dharmāśoka, under the influence of carnal passions, used an attendant of his (former wife). In the 3rd year from that date, this malicious and vain creature, who thought but of the charms of her own person, saying: "This king, neglecting me, lavishes his devotion exclusively on the bo-tree," in her rage (attempted to) destroy the great 'bo' with the poisoned fang of a toad. In the 4th year from that occurrence, this highly gifted monarch Dharmāśoka fulfilled the lot of mortality." (p. 134)

अर्थात् "उस समय से १०वें वर्ष उस महाराज की प्रिय पत्नी असन्धिमित्रा का, जिसकी बौद्ध मत पर अनन्य-भक्ति थी, देहान्त हो गया। (इसके देहान्त के) चौथे वर्ष राजा धर्माशोक ने विषयासक्त होकर अपनी (पहली स्त्री की) दासी को व्याह लिया। इसके तीसरे वर्ष इस दुष्टा और घमण्डी स्त्री ने, जो केवल अपनी शारीरिक शोभा की चिन्ता करती थी, सोचा 'यह राजा मेरी तो उपेक्षा करते और केवल बोधि वृक्ष पर अपार भक्ति रखते हैं।' इससे क्रुद्ध होकर उसने कछुए के विषैले डङ्क से महावृक्ष के नष्ट करने का यत्न किया। इस घटना के चौथे वर्ष महागुणी महाराज धर्माशोक की मृत्यु हो गई।" (पृष्ठ १३४)

इससे यह प्रकट होता है कि तिष्यरक्षिता महाराज अशोक के अन्तकाल तक नहीं तो उनके देहान्त से एक वर्ष पूर्व तक अवश्य जीवित थी। उस समय उसने बोधिवृक्ष के सुखाने का

यत्न किया था। यदि ऐसा है तो कुमार कुणाल ने उसका दण्ड क्षमा करवा दिया होगा। इस प्रकार यह दुःखान्त से सुखान्त नाटक बन गया। पूर्ण सुखान्त बनाने के लिए कुमार कुणाल के नेत्र प्रकट होना आवश्यक है। इसका आधार शिवि-जातक (जातक-संख्या ४९९) तथा कई ऐसी चमत्कारपूर्ण कथाएँ हैं। चीनी यात्री युअन-च्वाँग के मतानुसार कुणाल को दृष्टि पुनः प्राप्त हो गई थी*। परन्तु ऐतिहासिक सामग्री इसके विरुद्ध है।

मूलकथा में कुमार कुणाल तक्षशिला त्यागकर सीधे पाटलिपुत्र की ओर चल पड़ते हैं। इसका तात्पर्य क्या यह है कि वे शीघ्र ही सम्राट् अशोक को तिष्यरक्षिता के अपराध की सूचना देकर दण्ड दिलाना चाहते थे? परन्तु यह ठीक नहीं। जनश्रुति है कि कुमार कुणाल कुस्तान (Khotan) गये थे। यदि वे कुस्तान गये थे तो तक्षशिला-प्रान्त से निर्वासित होने पर ही गये होंगे†। अतएव मैंने इस कथानक में यह दिखाया है कि कुमार कुणाल देश-पर्यटन के लिए चले जाते हैं। कुस्तान आदि देखकर वे बौद्ध

* युअन-च्वाँग—वाटरज़, भाग १, पृष्ठ २४६।

† Ancient Khotan by Sir Aurel Stein p. 159: "The first ancestor of the King was the eldest son of King Aśoka and resided in the kingdom of Takṣaśilā. Having been exiled, he went to the north of the snowy mountains, where he led a normal life, seeking water and pastures for his flocks. Having arrived in this country [Khotan] he established there his residence.--

धर्म-सम्बन्धी स्थानों को देखने की लालसा से भ्रमण करते हुए मगध को ओर पहुँचते हैं और पाटलिपुत्र को मार्ग में पड़ता देख कर गुरुजनों के दर्शनार्थ रुक जाते हैं। वे चाहते हैं कि गुरु-जनों की चरण-रज लेकर यात्रा आरम्भ करें। यहाँ रहस्य प्रकट हो जाता है।

ऐसे ही कुछ और परिवर्तन किये गये हैं। इस नाटक के लिखने में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है, यह विज्ञ पाठक जान सकते हैं।

अन्त में एक बात का उल्लेख कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ। इस नाटक के कुछ पात्र तो ऐतिहासिक हैं और कुछ काल्पनिक। पुरुष-पात्रों में सम्राट् अशोक, कुमार कुणाल, अग्रामात्य राधागुप्त और महात्मा यश तथा स्त्री पात्रों में तिष्यरक्षिता और काञ्चनमाला ऐतिहासिक हैं, शेष काल्पनिक। इस नाटक में अशोकाराम विहार का उल्लेख है। इसी का दूसरा नाम कुक्कुटाराम विहार था।

लाहौर
३–९–१९३५

कैलाशनाथ भटनागर

——

मौर्य-वंशावली

चन्द्रगुप्त मौर्य
(ई० पू० ३२२-२६८)
|
बिन्दुसार अमित्रघात
(ई० पू० २६८-२७२)
|
अशोकवर्धन
(ई० पू० २७२-२३२)
की धर्मपत्नियाँ

- देवी (विदिशाश्रेष्ठी की कन्या)
  - महेन्द्र
  - सङ्घमित्रा
    का पति अग्निब्रह्मा
    - सुमन
- असन्धिमित्रा अग्रमहिषी (देहान्त २४० ई० पू०)
- चारुवाकी
  - तीवर
- पद्मावती
  - कुणाल धर्मविवर्धन (जन्म २६३ ई० पू०)
    - सम्प्रति* (काञ्चनमाला का पुत्र)
- तिष्यरक्षिता अग्रमहिषी (२३६ ई० पू०)

---

* परिशिष्टपर्वन् के पृष्ठ ६३ पर सम्प्रति की माता का नाम शरच्छ्री दिया है। परन्तु यह कथा प्रस्तुत कथा से भिन्न है। इसलिए यहाँ काञ्चनमाला नाम ही दिया है।

पुरुष-पात्र

अशोक	...	मौर्य-सम्राट्
कुमार कुणाल	...	सम्राट् अशोक को पहली रानो पद्मावती का पुत्र
राधागुप्त	...	अग्रामात्य
महात्मा यश	...	अशोकाराम विहार का सङ्घ-स्थविर
कीर्त्तिसेन	...	पाटलिपुत्र नगर का प्रसिद्ध वैद्यराज
आनन्दगुप्त, भवगुप्त, बुद्धगुप्त	...	अशोकाराम विहार के तीन भिक्षु
देवदत्त	...	अग्रामात्य का गुप्तचर
चन्द्रदत्त	...	एक अहीर
बलगुप्त	...	धनगुप्त सन्देशवाहक का भाई
इन्द्रगुप्त, रुद्रदत्त	...	दो नागरिक
चण्डसेन, रुद्रसेन	...	दो चाण्डाल

सेनापति तथा अन्य राजाधिकारो पुरुष, द्वारपाल, सैनिक सारथी आदि

स्त्री-पात्र

तिष्यरक्षिता	...	सम्राट् अशोक की अग्रमहिषी
आनन्दी	...	तिष्यरक्षिता की मुँहलगी दासो
काञ्चनमाला	...	कुमार कुणाल की स्त्री
कमला, विमला	...	काञ्चनमाला की दो सखियाँ

कुणाल

—:*:—

पहला अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र में अशोकाराम विहार

समय—सायंकाल के पूर्व

[कुछ भिक्षुओं का वार्तालाप]

पहला भिक्षु—इसकी ईर्ष्या की कुछ सीमा नहीं, द्वेष का कुछ अन्त नहीं। शोक है इस महारानी पर! यह मौर्यकुल के यश की उज्ज्वल चादर पर कलङ्क लगायेगी।

दूसरा भिक्षु—क्यों आनन्दगुप्त! कुछ और नई घटना हुई क्या?

आनन्दगुप्त—सो तो प्रतिदिन होती रहती है। आज सम्राट् ने बोधि-वृक्ष के लिए अमूल्य उपहार भेजा। तत्काल तिष्यरक्षिता के नेत्र तप्त शोणित से रक्त हो गये। उसके मुख ने अस्वीकृति की झलक प्रकट की। परन्तु सम्राट् से वह कुछ कह न सकी।

दूसरा भिक्षु—इस, महारानी का चरित्र महारानी पद के प्रतिकूल है। बोधिवृक्ष से ईर्ष्या! बोधिवृक्ष से द्वेष! वह बोधि-

वृक्ष जिसकी छाया में तथागत को सुबुद्धि प्राप्त हुई, दिव्य ज्ञान का प्रकाश हुआ; वह बोधिवृक्ष हमारे आदर का पात्र है, ईर्ष्या का नहीं।

तीसरा भिक्षु—बुद्धगुप्त ! तुम भी आनन्दगुप्त के साथ हाँ में हाँ मिलाने लगे। तुम किसके चरित्र पर आशङ्का कर रहे हो ?

आनन्दगुप्त—तो यह कहो कि भवगुप्त महारानी तिष्यरक्षिता की स्तुति करता है।

बुद्धगुप्त—(सावेग) हाँ, कहो-कहो, भवगुप्त ! तुम्हें क्या महारानी से उत्कोच मिलता है ? जान पड़ता है, महारानी ने तुम्हें अपने यश-प्रसार के लिए नियुक्त किया है। धन्य हो ! और सब लोग तो ऐसी दुश्चरित्रा की बुराई करते नहीं थकते, केवल तुम्हीं आज दिखाई पड़े हो जो उसकी प्रशंसा करते हो।

भवगुप्त—बस थक गये ! चुप क्यों हो गये ? भले लोग ! मेरी बात समझ भी ली या व्यर्थ मुझे लगे कोसने ?

आनन्दगुप्त—तुम्हारे कथन का गूढ़ार्थ क्या होता ? इसका तात्पर्य स्पष्ट है।

भवगुप्त—नमो बुद्धाय ! नमो बुद्धाय !! मैं महारानी की प्रशंसा नहीं करता। मेरा तात्पर्य यह है कि तिष्यरक्षिता वास्तव में थी तो महारानी असन्धिमित्रा की दासी ही। वह अपनी प्रकृति के अनुकूल ही आचरण कर रही है। ओह ! महारानी असन्धिमित्रा का चरित्र कैसा महान् था, और इसका

चरित्र कैसा नीच ! महाराज न जाने किस कारण इसके मायाजाल में फँस गये।

आनन्दगुप्त—महाराज अब वृद्ध हो गये। कहाँ यह आयु और कहाँ यह रूपजाल का बन्दी जीवन ! अद्भुत है, भगवान् ! तेरी माया ! ऐसे धर्मात्मा पुण्यात्मा के लिए भी मार का यह प्रभाव !

बुद्धगुप्त—अरे रीझे थे—कुछ गुण भी तो देखते ! वही बात हुई—सूरत देख के बल गई, एड़ी देख के जल गई।

आनन्दगुप्त—महारानी असन्धिमित्रा को प्रयाण किये चार वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु उनका नाम अब तक सब लोग सत्कार से लेते हैं। तिष्यरक्षिता को महारानी बने अभी थोड़ा समय हुआ है परन्तु इसके आचार-व्यवहार से सब अप्रसन्न हो रहे हैं।

भवगुप्त—महारानी असन्धिमित्रा की तो यह बात थी कि महाराज अशोक सङ्घ आदि स्थानों पर जितना दान देते थे, उससे बढ़-चढ़कर दान महारानी देना चाहती थीं। पर तिष्यरक्षिता ऐसी है कि महाराज अशोक जितना दान देते हैं, उतना ही वह क्रोध करती है। वह सोचती है कि क्या उपाय करूँ जिससे ये रत्न आदि और किसी को न मिलकर मुझे ही मिला करें।

आनन्दगुप्त—मुझे तो और ही भय दिखाई देता है। यदि तिष्यरक्षिता के गर्भ से महाराज के कोई पुत्र उत्पन्न हुआ तो राजकुमार कुणाल पर अत्याचार होगा।

बुद्धगुप्त—हाँ, यह तो स्पष्ट ही है।

भवगुप्त—हाँ, ठीक है। कुणाल का भविष्य अन्धकारमय हो जायगा।

बुद्धगुप्त—किन्तु कुणाल हैं अत्यन्त भद्र। यदि रानी पद्मावती जीवित होतीं तो इन्हें राज्य प्राप्त करने में सहायता मिल सकती थी। अब तिष्यरक्षिता है, वह बाधा डालेगी।

आनन्दगुप्त—यदि तिष्यरक्षिता के पुत्र हुआ तो वह अबोध शिशु इस विस्तृत राज्य की क्या रक्षा करेगा? राज्य के उत्तराधिकारी तो युवराज कुणाल हैं, और भविष्य में उन्हें ही राजा होना चाहिए। वे शूर-वीर हैं। उनसे शत्रुओं को आतङ्क रहेगा; अन्यथा प्रत्येक क्षण हमें यवनों का भय घेरे रहेगा। वे अवसर पाते ही भारतवर्ष की स्वर्णभूमि पर टूट पड़ेंगे, और इसे पद-दलित कर देंगे।

(एक शब्द सुनाई देता है)

जय-जय बोधिसत्व भगवान्!

पाकर ज्ञान आपका अविकल हुआ जगत-कल्याण।

भवगुप्त—(शब्द सुनकर) ओह! बहुत विलम्ब हुआ। सायंकालीन प्रार्थना का समय हो गया।

बुद्धगुप्त—अब शीघ्र चलना चाहिए।

सब—(उठकर) हाँ, चलो, चलो। (प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

—

दूसरा दृश्य

स्थान—अशोकाराम के संघस्थविर का स्थान

समय—प्रातःकाल

[महाराज अशोक और संघस्थविर यश]

यश—देश-देशान्तर में बौद्ध मत का डङ्का बज उठा है। सर्वत्र बुद्ध भगवान् का नाम देदीप्यमान हो रहा है। इसका श्रेय आपको है। बौद्ध मत के प्रति आपके दृढ़ अनुराग और अचल भक्ति का यह परिणाम है।

अशोक—महात्मन्! मैं इस कार्य का श्रेय भगवान् तथागत को ही देता हूँ। उन्होंने मेरे हृदय में इस कार्य के लिए उचित शक्ति का सञ्चार किया। मेरी यही मनोकामना है कि मैं बौद्ध मत के लिए अपना सर्वस्व त्याग दूँ। किन्तु...

यश—महाराज! इस सदिच्छा की पूर्त्ति के लिए आपने क्या नहीं किया? आपने सन्तान का मोह त्याग कर अपने पुत्र महेन्द्र और कुमारी सङ्घमित्रा को सिंहलद्वीप भेज दिया, राजकुमारी चारुमती को भिक्षुणी बनाकर नैपाल भेज दिया, और स्वयं सङ्घ में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की।...

अशोक—महात्मन्! इच्छा तो मेरी अब भी है, किन्तु आप महानुभावों का यह विचार भी उचित है कि राजसूत्र हाथ में रखकर मैं बौद्ध मत की अधिक सेवा कर सकता हूँ। अतएव विवश होकर मैंने राज्यत्याग नहीं किया।

यश—महाराज ! यह आपके प्रभाव का परिणाम है कि अब समस्त भारतभूमि में विहार दिखाई देने लगे हैं। केवल इस अशोकाराम विहार के लिए आपने कितना धन व्यय किया ! तीन वर्ष के कठिन परिश्रम और श्री इन्द्रगुप्त स्थविर के कुशल निरीक्षण में यह विशाल विहार तैयार हुआ है।

अशोक—यह विहार अत्यन्त रमणीय बना है। जी चाहता है कि घण्टों निरन्तर इस विहार की रमणीयता निहारता रहूँ। एक ओर मानवी चतुर चितेरों की सुघराई है, दूसरी ओर नैसर्गिक दृश्यों की मनोहरता !

यश—सङ्घ के पञ्चवर्षीय उत्सव के लिए यही स्थान उत्तम था।

(गाना सुनाई देता है)

है प्रभात मधु लेकर आया।

अम्बर में छाई है लाली,
हँसती वन की डाली-डाली,
जग की शोभा बनी निराली,
प्राणों में आनंद जगाया।
है प्रभात मधु लेकर आया।

माला बना रहा है माली,
आईं घड़ियाँ शोभाशाली,
विहगों ने पी छवि की प्याली,
रवि-अभिनंदन-गान सुनाया।
है प्रभात मधु लेकर आया।

अशोक—(गाना सुनकर) यह गाना तो कुमार कुणाल का है। भगवान् ने इसे कैसा अनुपम मधुर स्वर दिया है। कैसी आकर्षक शक्ति है !

यश—महाराज ! यदि अप्रिय न लगे तो कुछ कहूँ ?

अशोक—महायशस्वी सङ्घस्थविर ! आपके वचन कटु क्योंकर लगेंगे ? आप तो सदैव मेरा हित चाहते हैं। आप मेरे अहित की बात क्यों कहने लगे जो मुझे अप्रिय लगेगी ?

यश—प्रजावत्सल ! हित की बात कटु लगती है। अच्छा सुनिये। कुमार कुणाल अब युवा हैं। इन्हें राजकार्य की शिक्षा देना उचित है। इनका राजनीति में निपुण होना आवश्यक है।

अशोक—आपकी क्या आज्ञा है ?

यश—अच्छा हो, यदि कुमार को किसी प्रदेश का उपराज बना दिया जाय।

अशोक—मैं आपके विचार से सर्वथा सहमत हूँ। आपने......

[कुमार का प्रवेश और यथोचित दण्डवत् आदि करना]

अशोक—पुत्र कुणाल ! कहो, कहाँ थे ?

कुमार—पिताजी ! यहीं विहार के रम्य उद्यान की शोभा देख रहा था। प्रकृति की सुन्दर रचना से मुग्ध हुआ यहीं घूम रहा था !

अशोक—कुमार ! अब युवा हो। मैं वृद्ध हूँ। मेरी इच्छा है कि तुम अब राजकार्य में मेरा हाथ बँटाओ।

यश—हाँ कुमार ! मैं भी यही चाहता हूँ। मौर्यकुल-राजकुमार उचित शिक्षा ग्रहण करें, राजकार्य में अभ्यास प्राप्त करें।

कुमार—महाराज ! महात्मा सङ्घस्थविरजी ! आप जो आज्ञा करें मैं उसे पूर्ण करने के लिए उद्यत हूँ। मुझे आपका संकेत-मात्र पर्याप्त है।

यश—ठीक है, कुमार ! ठीक है। तुम जैसी सन्तान के लिए संकेत ही पर्याप्त है। (स्वगत) प्रतीत होता है कि कुमार के नेत्र शीघ्र नष्ट हो जायँगे। (प्रकट) कुमार ! एक बात का स्मरण रखना।

कुमार—आज्ञा कीजिए।

यश—कुमार ! नेत्र अनित्य हैं, चञ्चल हैं, सहस्रों दुःखों के वासस्थान हैं। सदा इनकी परीक्षा करते रहना चाहिए। जहाँ अनेक पुरुष अनुरक्त होते हैं, वहाँ अन्य जन अहित करने का यत्न करते हैं।

कुमार—आपकी आज्ञा का ध्यान रखूँगा। (अशोक की ओर देखकर) पिताजी ! आपकी कुछ और आज्ञा हो तो...

अशोक—प्रिय कुमार ! तुम मेरे आज्ञाकारी पुत्र हो। तुम्हारे लिए आज्ञा की कुछ आवश्यकता नहीं, सङ्केत ही पर्याप्त है।

कुमार—पूज्यपाद ! आपके सङ्केत का भी उल्लङ्घन करना मेरे लिए सर्वथा असम्भव है। आपके सङ्केत पर मैं अपने प्राणों पर भी खेल सकता हूँ।

अशोक—मेरे प्रिय कुणाल ! (आलिङ्गन करते हैं) मुझे तुमसे ऐसी ही आशा है। [पट-परिवर्तन

———

तीसरा दृश्य

स्थान—राजप्रासाद में कुमार कुणाल का भवन

[कुमार कुणाल और काञ्चनमाला]

काञ्चनमाला—नाथ! बोधिवृक्ष को देखकर हृदय की अद्भुत दशा हो जाती है। महात्मा तथागत में मन लीन हो जाता है। उस समय की घटनाओं का स्मरण हो आता है जिस समय भगवान् बुद्ध तपस्या में तत्पर थे और मार आदि बाधाकारिणी शक्तियाँ उन्हें पथच्युत करने का प्रयत्न कर रही थीं। नमो बुद्धाय।

कुणाल—नमो बुद्धाय। मार के प्रभाव से अविचलित शाक्य-मुनि का उसे आह्वान करना कैसा सुन्दर है!—"पर्वत-राज मेरु यद्यपि स्थानच्युत हो जाय, समस्त संसार लुप्त हो जाय, इन्द्र-सहित सब तारागण आकाश से भूमि पर गिर पड़ें, सब जीवों का एकमत हो जाय, महासागर सूख जाय, तथापि मुझे इस वृक्षराज के तल से कोई हटा नहीं सकता।"

काञ्चनमाला—इतने उच्च आदर्श के साथ उच्च ज्ञान की प्राप्ति उचित थी। धन्य है वह स्थान, वह पीपल का वृक्ष, जहाँ तथागत को बोध हुआ। धन्य है बोधिवृक्ष! सब जिसे शीश झुकाते हैं।

कुणाल—इसी कारण बोधिवृक्ष को देखकर हमारा हृदय सुगत की ओर आकृष्ट हो जाता है, मन में हर्ष और उल्लास की उमङ्गें हिलोरें लेने लगती हैं। सुगत के स्मृतिबोधक वृक्ष के सामने हमारा सिर स्वयमेव झुक जाता है।

काञ्चनमाला—इस वृक्ष पर सब कोई प्रेम करते हैं, श्रद्धा रखते हैं। महाराज तो इसके अनन्य भक्त हैं। केवल माता तिष्यरक्षिता ही इससे ईर्ष्या करती हैं। इनका यह स्वभाव विचित्र है, दुर्ज्ञेय है। सुना है, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की धार्मिक प्रवृत्ति प्रबल होती है। किन्तु यहाँ यह विचार प्रतिकूल दिखाई देता है।

कुणाल—प्रिये! इस रहस्य को हमारी स्थूल बुद्धि क्या समझे? इतना तो स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति भिन्न है, स्वभाव पृथक् है, मति-गति निराली है। अतएव तुम यही समझो कि माता तिष्यरक्षिता का रङ्ग-ढङ्ग महाराज या हम सबसे निराला है।

काञ्चनमाला—भला ऐसा निराला क्या जिससे नाम पर बट्टा लगे, कुल पर कलङ्क लगे।

कुणाल—माता असन्धिमित्रा के सामने तो ये अच्छी थीं।

काञ्चनमाला—'अच्छी थीं' यह कैसे? तब इनकी परीक्षा लेने की आवश्यकता किसे थी?

कुणाल—यद्यपि तब अच्छी न रही होंगी किन्तु अब ये महारानी हैं। इसी कारण इन्हें अपना व्यवहार बदलना चाहिए।

सुना है, प्रजाजन इनके सम्बन्ध में मनमानी हाँकते हैं। ऐसी बातों पर मेरा हृदय मुरझा जाता है, मातृगर्व पर तुषार-पात हो जाता है। मैंने मातृ-सुख नहीं देखा था। माता पद्मावती मुझे प्रसवकाल में ही छोड़कर परलोक सिधार गईं। माता असन्धिमित्रा ने भी वियोग दिखाया। इन्हें अब माता मानता हूँ, परन्तु लज्जा उठानी पड़ती है।

काञ्चनमाला—(पद्मावती की मूर्त्ति को देखकर) माताजी! यदि आप जीवित होतीं, तो प्रजा में आपके सद्गुणों का वर्णन सुनकर इन्हें कितना हर्ष होता!

कुणाल—(माता पद्मावती की मूर्ति देखकर) माता! मेरे उत्पन्न होते ही आप मुझे त्यागकर चल दीं। आपने सन्तान-सुख न देखा, मैंने जन्मदात्री माता का सुख...(सजल नेत्रों से मूर्ति के गले में एक माला डाल देते हैं।)

काञ्चनमाला—(कुमार के सजल नेत्र देखकर) नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय। शोक तो है महाराज की बुद्धि पर जिन्होंने इस अवस्था में यह बवाल लगा लिया।

कुणाल—महाराज बड़े हैं, हमारे पूज्य हैं। उनकी कृतियों की आलोचना करना हमारी सीमा से बाहर है। अब यह प्रसङ्ग छोड़ो। निन्दा करना पाप है। मनोविनोद का प्रसङ्ग छेड़ो। एक सुन्दर गीत सुनाकर मन का उद्वेग शान्त करो।

काञ्चनमाला—आप ही न ज़रा वीणा बजाकर हर्ष की बाढ़ ला दें। आपकी वीणा में वह शक्ति है जो भरत मुनि

की सानी रखती है। आपको वीणा सुनकर मन मुग्ध हो अचेतन-सा हो जाता है।

कुणाल—वाह! तो अचेतनावस्था अच्छी है या चेतनावस्था?

काञ्चनमाला—प्रेमस्रोत की आनन्द-तरङ्गों से उत्पन्न अचेतनावस्था भी भली है। साँप जैसा दुष्ट जीव भी वीणा के वशीभूत हो ऐसा हो जाता है, फिर विशेषतया एक अनुरक्त व्यक्ति क्योंकर अचेतन न हो?

कुणाल—अच्छा, अब समझा। तुम्हारा अभिप्राय यह है कि तुम्हारे गीत से आकृष्ट हुआ प्राणी सुध-बुध खो बैठता है। अपने गान की प्रशंसा अपने आप ही!

काञ्चनमाला—(लजाकर) उँह! तो मैं नहीं गाती। आप मुझे बनाते हैं।

कुणाल—(हाथ पकड़कर) क्रोध मत करो। रुष्ट हो गईं!

काञ्चनमाला—मैं जाती हूँ।

कुणाल—(रोककर) गीत सुनाये बिना जाना कठिन है।

काञ्चनमाला—तो आप भी एक बात मानें।

कुणाल—कहो।

काञ्चनमाला—आप साथ वीणा बजायें तो गाऊँ।

कुणाल—(हँसकर) यह कृत्रिम रोष का अभिप्राय मैं पहले हो समझ गया था।

काञ्चनमाला—इच्छा न हो तो जाने दीजिए। (जाना चाहती है)

कुणाल—अच्छा, तुम्हारी इच्छा ही सही।

काञ्चनमाला—(हँसकर वीणा पकड़ाती है) लीजिए, आरम्भ कीजिए।

(कुणाल वीणा बजाते हैं. काञ्चनमाला गाती है)

जगत में झूठा है अभिमान।
राजा रानी राव रङ्क सब, चार दिवस महमान॥
जन अधिकार प्राप्त करने को सहते कष्ट महान।
करते धरा रक्त से रञ्जित खोते प्रियतम प्राण॥
पर सब पड़ा यहीं रह जाता तन, धन, धरणी, मान।
अन्त-समय तो कर फैलाकर होते सभी समान॥
बोधि-भाव ही केवल जग में करता शान्ति प्रदान।
वही अमर है, अभय-रूप है, है आनन्द-निधान॥

[पट-परिवर्त्तन

चौथा दृश्य

स्थान—महाराज अशोक का राजप्रासाद

[महाराज अशोक और तिष्यरक्षिता]

तिष्यरक्षिता—प्राणाधार ! एक बात पूछूँ ?

अशोक—हाँ, पूछने के लिए आज्ञा की क्या आवश्यकता ?

तिष्यरक्षिता—महाराज ! बात ही ऐसी है। इसलिए पहले पूछ लेती हूँ कि आप उत्तर देंगे या नहीं।

अशोक—तिष्ये ! मैंने तुम्हारी कोई बात टाली है जो इस समय शङ्का करती हो ?

तिष्यरक्षिता—अच्छा बताइए, मैं आपको अधिक प्रिय हूँ या पहली रानी असन्धिमित्रा।

(अशोक मौन रह जाते हैं)

तिष्यरक्षिता—महाराज ! चुप क्यों हैं ? उत्तर दीजिए।

अशोक—प्रिये ! उत्तर क्या दूँ ? बात ही ऐसी है।

तिष्यरक्षिता—तो आप अपने वचन से गिर रहे हैं।

अशोक—तिष्ये ! आज तुम्हें यह क्या सूझी ?

तिष्यरक्षिता—अब टाल-मटोल मत कीजिए। अच्छा, जाने दीजिए। मौन रहने से उत्तर स्वयं स्पष्ट है।

अशोक—(विस्मय से) क्या ?

तिष्यरक्षिता—यही कि मैं नहीं, रानी असन्धिमित्रा अधिक प्रिय थीं।

अशोक—(बड़े असमञ्जस में) प्रिये ! इस बात का उत्तर मैंने कभी सोचा न था। प्रश्न ऐसा जटिल है कि सहसा उत्तर देते नहीं बनता।

तिष्यरक्षिता—हाँ, मैं समझ गई; मेरा अनुमान असङ्गत नहीं है।

अशोक—(सोचते हैं) क्या कहें ? कुछ कहना उचित है। (प्रकट) प्रिय तो महारानी असन्धिमित्रा भी थीं परन्तु वे मुझे अपनी ओर इतना आकृष्ट नहीं कर सकी थीं जितना तुम।

तिष्यरक्षिता—वाह ! इतना सोच-विचारकर उत्तर दिया और तब भी वही बात कही जो मैंने पहले समझ ली थी।

अशोक—यह कैसे ? मैंने तो.....

तिष्यरक्षिता—महाराज ! जरा सुनिए। आपके कथन का अर्थ यह है कि जैसे मैं आपको प्रिय हूँ वैसे रानी असन्धिमित्रा भी थीं परन्तु वे आपको अपनी ओर अधिक खींच नहीं सकीं और मैंने खींच लिया है। इसमें विशेषता तो मेरी हुई। आपने तो दोनों को एक समान माना।

अशोक—इतनी क्यों बनती हो ? स्वयं कह रही हो कि इसमें विशेषता मेरी हुई और फिर भी वाद-विवाद में तत्पर हो। मैंने भी तो विशेषता तुम्हीं में बताई थी।

तिष्यरक्षिता—(मुसकराकर) आप मेरी विशेषता से मुझे प्रसन्न नहीं कर सकते। यदि आप मुझे अधिक प्रिय बताते तो मुझे सन्तोष होता।

अशोक—महारानी तिष्ये ! क्या इसके कहने की आवश्यकता है ? सबका विरोध होने पर भी तुम्हें महारानी बनाना क्या प्रकट करता है ? केवल तुम्हारे लिए मेरे प्रेम की पराकाष्ठा !

तिष्यरक्षिता—(प्रसन्न होकर) मेरी यही प्रार्थना है कि आपका प्रेम मेरे लिए अटूट हो, अक्षीण हो।

अशोक—महारानी ! ऐसा ही होगा। इसकी क्या चिन्ता !

तिष्यरक्षिता—चिन्ता भला क्यों होती ? केवल यही विचार उठता है कि कुमार कुणाल के कहने पर आप कभी मुझ पर रुष्ट न हो जायँ, आपका प्रेम-स्रोत मेरी ओर से सूख न जाय।

अशोक—तिष्ये ! तुम कुमार का कुछ भय मत करो। वह अत्यन्त सहनशील और विनीत है। वह कभी कोई ऐसी बात नहीं करेगा, जिससे तुम्हें लेशमात्र दुःख हो या क्लेश की सम्भावना हो।

तिष्यरक्षिता—मैंने सुना है कि कुमार मन ही मन मुझसे जलते हैं, द्वेष करते हैं।

अशोक—प्रिये ! तुम इन बातों पर विश्वास मत करो। लोग व्यर्थ बहकाया करते हैं। कुमार इस प्रकृति का नहीं है कि पिता के कार्य पर अस्वीकृति प्रकट करे।

तिष्यरक्षिता—महाराज ! मुझे विश्वस्त सूत्र से विदित हुआ है कि कुमार को अपने युवराज पद के छिन जाने का भय उपस्थित हो गया है। अतएव वह मेरे विरुद्ध है।

अशोक—तिष्ये ! आज तुम्हें क्या हो गया है ? मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ कि कुमार कुणाल वैसा नहीं है, जैसा तुमने समझा है। वह माता-पिता का आज्ञाकारी है। उससे तुम तनिक भी मत डरो, निश्चिन्त रहो।

तिष्यरक्षिता—(स्वगत) अभी दाल नहीं गलती। फिर कभी अवसर देखकर दाँव लगाऊँगी। (प्रकट) हाँ, ठीक है, महाराज की कृपा-दृष्टि होने पर भय कैसा ?

अशोक—रानी ! तुम कुमार के स्वभाव से अभी परिचित नहीं हुई हो। इसी लिए तुम्हें ऐसी आशङ्का हुई है। तुम उसके चरित्र की जाँच करोगी तो उसे गुण-धाम पाओगी।

तिष्यरक्षिता—(स्वगत) देखो, यह कुमार का कितना आदर करते हैं। देखूँगी। (प्रकट) भगवान् करे, आपका अनुमान सत्य हो।

[पट-परिवर्तन

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—राजप्रासाद में आनन्दवर्धन उद्यान

समय—प्रातःकाल

[हाथ में वीणा लिये हुए कुणाल का प्रवेश]

कुणाल--(टहलते हुए) वाह ! वीणा भी कैसी अनुपम वस्तु है। इसके तारों को तनिक हिला दो तो बोलने लग जाती है। मर्त्यलोक के शब्द को आकाश और पाताल में पहुँचा देती है। हृदय-रूपी तन्त्री के स्वरों को मुक्त कर आनन्ददायिनी वीणा-रूपी तन्त्री से जोड़ देती है। हृदय को वशीभूत कर वीणा अपना प्रभुत्व दिखाती है। इस रमणीय काल में यह रम्य उद्यान कोयल के कुहू-कुहू शब्द से कैसा गुञ्जायमान हो रहा है। पक्षियों का कलरव कितना कर्णमधुर है! पक्षियों का रंग-रूप मनोमोहक है। अच्छा, इस वीणा की ध्वनि से मैं इन पक्षियों को अभयदान देकर यहाँ मुग्ध किये रखता हूँ। (गाता है)

अलौकिक शोभा है उपवन की।
भाँति-भाँति के सुमन खिले हैं, सुरभित दिशा भुवन की।
कर मकरन्द-पान गूँजे अलि, कोयल मोहक मन की॥ अलौ० ॥

पागल होते प्रभा देखकर शोभा, अरुण गगन की।
दिशा-दिशा में छाई है, ध्वनि विहगों के कूजन की॥ अलौ० ॥
हुलसा हृदय, उदासी भागी क्षण भर में आनन की।
विदित हुई नलिनी को ज्यों ही आगति फिर पूषण की॥ अलौ० ॥
विस्मय होता देख प्रीति को अतिशय लता पवन की।
जब आता है पवन पास तब झुकती गर्दन इनकी॥ अलौ० ॥

[तिष्यरक्षिता का प्रवेश]

तिष्यरक्षिता—(गाने का शब्द सुनकर) मेरा हृदय इस गीत की ओर क्यों आकृष्ट हो रहा है? कैसी सम्मोहिनी तान है! देखूँ, यह किसका मधुर स्वर है। (बढ़ती है; कुणाल को देखकर) कुणाल की वीणा में कैसा मधुर रस है! आज तक मैं इस मधुर सुधामय गीत से वञ्चित थी। (कुणाल की ओर टकटकी लगाकर) कुणाल स्वयं कितने मधुर स्वभाव तथा सौम्य आकृति का युवक है! चलूँ, जरा पास जाकर वीणा सुनूँ। (आगे बढ़ती है)

[कुणाल का गाना सुनाई देता है]

लता-कुञ्ज की प्रकृति-कृती भी, है आकर्षक जन की।
भाव भरे खेलों से मानों, ईश्वर-सृष्टि-सृजन की।
बतलाकर अति अद्भुत महिमा, भरती चाह लगन की॥ अलौ० ॥

तिष्यरक्षिता—(पास पहुँचकर प्रत्यक्ष) कुणाल, धन्य है तुम्हारी वीणा और धन्य हो तुम!

कुणाल—(तिष्यरक्षिता को देखकर) प्रणाम।

तिष्यरक्षिता—चिरञ्जीव रहो कुणाल! तुम्हारी वीणा में विचित्र शक्ति है। इसका मधुर रस पान कर मन सम्मोहित हो जाता है। कानों में सुधारस बरसने लगता है।

कुणाल—आप तो अधिक प्रशंसा करती हैं। वीणा बजाकर मैं एक-आध क्षण अपना मन बहला लेता हूँ।

तिष्यरक्षिता—नहीं, अपना मन ही नहीं बहलाते, वरन् श्रोताओं का मन भी मथ डालते हो। वीणा का शब्द सुनाकर शत्रु को भी अपनी मुट्ठी में कर लेते हो।

कुणाल—यह सब गुरुजनों की कृपा का फल है। मैं आपका धन्यवाद करता हूँ जो आप इस प्रकार मेरी प्रशंसा करती हैं।

तिष्यरक्षिता—कुणाल! यह स्तुति या प्रशंसा नहीं, स्वयं अनुभव की गई बात है।

कुणाल—हाँ, क्यों न हो। माता और पुत्र का सम्बन्ध ही ऐसा है। पुत्र का ज़रा सा भी अच्छा काम माता को बहुत अच्छा जान पड़ता है।

तिष्यरक्षिता—'माता'! वाह कुणाल! मैं ख़ूब जानती हूँ कि मेरे प्रति तुम्हारे कैसे भाव हैं! तुम मुझे माता-तुल्य मानते हो?

कुणाल—क्यों नहीं मानता? जब आप अब महाराज अशोक की महारानी बन गई हैं तो स्वयमेव मेरी माता भी हो गईं। इसमें मानने का प्रश्न कैसा?

तिष्यरक्षिता—कुणाल! सच कहना, क्या तुम रानी पद्मावती और मुझमें कुछ अन्तर नहीं मानते? (कुछ क्रोध के साथ)

एक की पाषाण-मूर्ति का भी तुम हार्दिक सत्कार करते हो, दूसरी का जीवित होने पर भी मौखिक ! एक का पुत्र होने में तुम गर्व करते हो, दूसरी से सम्बन्ध मानने में लज्जा ! क्या यह ठीक नहीं ? कहो कुणाल, कहो।

कुणाल—माता ! यदि मेरे व्यवहार में आपको कुछ अन्तर दिखाई देता है तो उसका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर नहीं। भगवान् ने मेरा हाड़-मांस माता पद्मावती के शरीर द्वारा रचा है, अतएव उनकी मूर्त्ति देखकर मेरा व्यवहार स्वयमेव ऐसा हो जाता है जिससे आपको अन्तर दिखाई देता है। आपका यह विचार सर्वथा निराधार है कि मैं आपको माता कहने में लजाता हूँ। भला लज्जा किस बात को ? जब सम्राट् आपको सम्राज्ञी बनाने में गर्व करते हैं, तो आपको माता मानने में मुझे लज्जा कैसी ?

तिष्यरक्षिता—हाँ, तो यह तुमने स्वीकार किया कि रानी पद्मावती की पाषाण-मूर्त्ति भी तुम्हें अधिक माननीय है; और मैं महारानी होकर भी, जीवितावस्था में भी, उनसे कम आदर की पात्र हूँ। यह मेरा अपमान है, मैं इसे सह नहीं सकती।

कुणाल—माता ! मेरा इसमें कुछ दोष नहीं। मैं तो आपका, माता पद्मावती के तुल्य, सम्मान करता हूँ। परन्तु पुरुष का अपनी जन्मदात्री माता के प्रति स्वभावतः जो अधिक प्रेम या अनुराग हो जाता है, उसके लिए मैं विवश हूँ।

तिष्यरक्षिता—तुम विवश हो, तो क्या काञ्चनमाला भी विवश है? यह भी मेरे साथ ऐसा ही व्यवहार करती है। तुम कितनी ही बातें बनाओ, किन्तु मैं जानती हूँ कि तुम दोनों मुझे घृणा की दृष्टि से देखते हो।

कुणाल—माता! आप यह निराधार कल्पना क्यों करने लगीं? देखता हूँ, किसी ने आपको बहका दिया है...।

तिष्यरक्षिता—क्या मेरे आँखें नहीं हैं? मैं कुछ समझती नहीं?

कुणाल—माता पद्मावती की मूर्त्ति पर मेरा अत्यधिक स्नेह और श्रद्धा देखकर कदाचित् वह भी मेरा अनुकरण करती हो। आप क्रोध न करें। आप जो आज्ञा करें, हमें शिरोधार्य है।

तिष्यरक्षिता—मेरी कुछ आज्ञा नहीं। जब तुम मुझे मृत रानी पद्मावती की पाषाण-मूर्त्ति के तुल्य भी नहीं मानते, वरञ्च दोनों में अन्तर होने का कारण बताते हो और उसकी पुष्टि करते हो, तब मुझे तुमसे क्या आशा हो सकती है? मैं कई बार सुन चुकी थी कि महाराज के साथ मेरा सम्बन्ध तुम्हें प्रिय नहीं। आज मुझे प्रत्यक्ष हो गया कि तुम साधारण रानी पद्मावती की पाषाण-मूर्त्ति के सामने जीवित महारानी तिष्यरक्षिता को तुच्छ समझते हो और इसका कारण बताते हो। यह मेरा अपमान है। इसका फल तुम्हें मिलेगा।

कुणाल—(नम्र भाव से) माता! आप जो कुछ दण्ड देंगी मैं सहर्ष सहन करूँगा। मैं आपका विरोध कभी नहीं करता,

इस पर भी आप व्यर्थ क्रुद्ध हो रही हैं। यह आपकी भूल है।

तिष्यरक्षिता--(सावेग) मेरी भूल ? मेरी भूल नहीं है। तुम्हें गर्व है; युवराजपद का अहङ्कार है। इस कारण महाराज की प्रधान महिषी का अपमान करते हो, निरादर करते हो, मन ही मन ईर्ष्या करते हो। मैं तुम्हारा गर्व सहन नहीं कर सकती। (जाती है)

कुणाल—न जाने आज इनका यहाँ आना कैसे हुआ ? क्या कलह का कोई कारण बनाना था ! क्या रहस्य है ? (गाता है)

नारी-हृदय कौन पहिचाने ?
अखिल-लोक-आकर्ष-करण मायामय, बुध जाने।
कलुष, कठिनता-कलित कलेवर कमल लजाने ॥
सब विधि विधिसम अगम अगोचर, कवि क्या जाय सुनाने ?
नेह नीति नत नित्य रहें हम, तो भी भाव न माने ॥
वे माता हैं, मैं सुत प्यारा, ये तो निरे बहाने।
ईर्ष्या भरा हृदय, देती हैं बात-बात में ताने ॥
यद्यपि पुत्र कहें ऊपर से, कहीं वचन रससाने।
यही पढ़ाकर नित्य भूप को, कठिन कलह की ठाने ॥

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

——

छठा दृश्य

स्थान—महाराज अशोक का सभागृह

समय—सायङ्काल

[महाराज अशोक बैठे हुए दिखाई देते हैं]

अशोक—(द्वारपाल को बुलाकर) द्वारपाल ! और कोई गुप्तचर प्रतीक्षा में हो तो लाओ।

द्वारपाल—महाराज ! अब सब गुप्तचर, जो आपके दर्शनों के प्रार्थी थे, दर्शन पा चुके; शेष कोई नहीं है।

अशोक—अच्छा, जाओ।

[द्वारपाल का प्रस्थान और पुनः प्रवेश]

द्वारपाल—महाराज ! अग्रामात्य जी पधारे हैं। किसी आवश्यक कार्य से शीघ्र दर्शन करना चाहते हैं।

अशोक—आने दो।

द्वारपाल—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

[अग्रामात्य राधागुप्त का प्रवेश]

राधागुप्त—महाराज ! तक्षशिला से यह अत्यावश्यक पत्र आया है। (पत्र निकालते हैं)

अशोक—(चिन्तापूर्वक) क्या लिखा है ?

राधागुप्त—(पत्र खोलकर) महाराज ! तक्षशिला पर पूर्ण रूप से हमारा अधिकार नहीं जमता। पुनः उपद्रव आरम्भ हो गया।

अशोक—पुनः उपद्रव ! बारम्बार उपद्रव का कारण क्या है ? पत्र पढ़िए ।

(राधागुप्त पत्र पढ़ते हैं)

"देवानांप्रिय प्रियदर्शी सम्राट् श्री अशोक की सेवा में तक्षशिला नगरी के अमात्यगण सादर प्रणाम के अनन्तर निवेदन करते हैं कि यहाँ के प्रान्त-निवासी पुनः अशान्त हो रहे हैं। अमात्यवर्ग ने उन्हें शान्त करने का भरसक यत्न किया है, परन्तु उनकी इच्छाएँ उत्कट रूप धारण करती जाती हैं, चन्द्रांश की भाँति प्रतिदिन बढ़ती जाती हैं। उनकी नवीन आकांक्षा है कि सीमा के बहिःस्थित यवनों के साथ मिलकर आपके प्रति विद्रोह प्रज्वलित करके पृथक् राज्य की स्थापना की जाय। गुप्तचरों द्वारा सूचना मिली है कि कुछ व्यक्ति इस उद्देश से षड्यन्त्र रच रहे हैं। इसका यथोचित प्रबन्ध होना आवश्यक है।"

अशोक—महाराज बिन्दुसार के समय में भी पहले एक बार वहाँ विद्रोह हुआ था। तब कुमार सुषीम वहाँ के उपराज थे। उन्हें विद्रोह-दमन करने में असफल देखकर महाराज ने मुझे उज्जैन से तक्षशिला जाने की आज्ञा भेजी थी।

राधागुप्त—सम्राट् ! तब उपद्रव का कारण यह भी था कि प्रान्त को हस्तगत हुए अल्प समय हुआ था।

अशोक—अग्रामात्य ! आप ठीक कहते हैं किन्तु आपसे यह बात छिपी नहीं कि वहाँ के लोग स्वतन्त्रता-प्रिय हैं,

स्वच्छन्दतापूर्वक अपना कार्य करना चाहते हैं। उनकी इस मनोवृत्ति में तनिक सी भी बाधा उन्हें दुःसह हो उठती है।

राधागुप्त--महाराज को तो उस सीमावर्त्ती प्रान्त का अच्छा अनुभव है। आप क्या परामर्श देते हैं?

अशोक--अग्रामात्य! आपकी इतनी अवस्था राजनीतिक झञ्झटों में ही व्यतीत हुई है। क्या आपका अनुभव कम है? कई सङ्गीन मामलों में आपकी बुद्धि के चमत्कार द्वारा मेरा कल्याण हुआ है, अतः आप ही कुछ उचित परामर्श दें।

राधागुप्त--मञ्झन्तिक ने धर्मप्रचार की अपूर्व शक्ति से काश्मीर और गान्धार में ८०,००० पुरुषों को बौद्ध मत में दीक्षित किया था। बौद्ध व्यक्ति हिंसा, निष्ठुरता, क्रोध, ईर्ष्या आदि पापों में नहीं पड़ता। अतएव उन प्रान्त-निवासियों का आप सदृश धर्मशील और प्रजावत्सल महाराज के प्रति विद्रोह करना सर्वथा अनुचित है।

अशोक--अग्रामात्य! आपका कथन ठीक है; किन्तु प्रकृति दुःसाध्य है। ऐसा व्यक्ति विरला ही होता है जिसका कर्म धर्मानुकूल हो। मनुष्य आवेग में आकर कुछ का कुछ कर डालता है। उसे सत्कर्म और दुष्कर्म का ज्ञान नहीं रहता। जब मनुष्य पर कोई सङ्कट आ पड़ता है तब उसमें प्रतिकार की प्रवृत्ति उत्तेजित हो उठती है; उस

सङ्कट के मूल कारण को हटाने के लिए वह प्रयत्नशील होता है। स्वरक्षा के लिए प्रतिकार क्रिया श्रेष्ठ मार्ग समझा जाता है।

राधागुप्त—सम्राट्! आपकी समझ में प्रजा पर कौन सा सङ्कट होगा जिससे वह आपके विरुद्ध उत्तेजित हुई? यह तो एक प्रत्यक्ष बात है कि तक्षशिला प्रान्त हमारे प्रधान नगर पाटलिपुत्र से बहुत दूरी पर है। अधिकार-लोलुप लोग स्वतन्त्रता प्राप्त करके अपना अधिकार पुनः जमाना चाहते होंगे। सम्यक् शासन में इतना बड़ा अन्तर भी बाधा है।

अशोक—सम्भव है, राजाधिकारी अत्याचार करते हों।

राधागुप्त—क्या आप उन प्रान्त-निवासियों के ऐसे व्यवहार का उत्तरदायित्व वहाँ के अमात्यवर्ग पर रखते हैं?

अशोक—अग्रामात्य! आप जानते हैं कि मनुष्य अधिकार-लोलुप है। अधिक से अधिक मात्रा में अधिकार प्राप्त करना चाहता है। अधिकार प्राप्त करने पर गर्व हो जाता है। गर्वोन्मत्त मनुष्य दूसरों को कुछ नहीं समझता। सबको पैरों तले रौंदना चाहता है। पैरों तले कुचला जा रहा मनुष्य चिल्लाता और स्वरक्षा के लिए हाथ-पैर मारता है। जब कुछ काम नहीं बनता तब एक उत्कट इच्छा प्रवृत्त होती है, जो प्रतिकार-रूप में परिवर्तित हो जाती है।

राधागुप्त—इसी कारण तो आपने व्यवस्था की है कि रज्जूक प्रति पाँचवें वर्ष अपने-अपने स्थान में चक्कर लगाया करें; लोगों के सुख-दुःख की जाँच करें और शान्ति का राज्य स्थापित करें। उन्हें न्याय आदि कार्यों में पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी है जिससे वे अपना कर्त्तव्य निर्भय होकर पालन कर सकें।

अशोक—आश्चर्य है कि यह सब प्रबन्ध करने पर भी प्रजा पर अत्याचार हो।

राधागुप्त—आश्चर्य कैसा? जब वह प्रान्त इतनी दूर है और हमें अपने राजपुरुषों द्वारा ही वहाँ की सूचना मिलती है, तो क्या आश्चर्य है यदि सब राजपुरुष एक हो गये हों और मनमानी करते हों। यह बात तो हमारे ध्यान में आ चुकी है कि रज्जूक कई बार कर्त्तव्य-मार्ग से च्युत हो चुके हैं। उनका ऐसा करना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

अशोक—अग्रामात्य! आप अब तक्षशिला का क्या प्रबन्ध करना चाहते हैं?

राधागुप्त—मेरा विचार है कि यदि महाराज वहाँ स्वयं जाने का कष्ट सहन करें तो अत्युत्तम है।

अशोक—मेरा भी यही विचार है। मैं चाहता हूँ कि मैं स्वयं जाकर प्रान्त का निरीक्षण करूँ और तदनुकूल उपाय सोचकर पुनः शान्ति स्थापित करूँ। मुझे विश्वास नहीं होता कि मेरे स्वयं उपस्थित होने पर प्रजा विद्रोही रह सके।

राधागुप्त—आप पहले वहाँ उपराज रूप में रह चुके हैं। मुझे निश्चय है कि आप शीघ्र ही शान्ति स्थापित कर देंगे।

अशोक—मैं शीघ्र ही प्रस्थान करना चाहता हूँ। आप कल यात्रा के लिए प्रबन्ध कर दें।

राधागुप्त—तथास्तु। मैं अभी प्रबन्ध किये देता हूँ।

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

सातवाँ दृश्य

स्थान—तिष्यरक्षिता का भवन

समय—रात्रि-काल

[तिष्यरक्षिता बैठी गा रही है ।]

हृदय मत हो तू अधिक अधीर ।
जान-बूझकर मत फँस उसमें जो है जाल-जँजीर ॥ हृदय० ॥
प्रेम-सिन्धु में पड़कर भोले ! किसने पाया तीर ?
जिसके लिए विकल तू इतना, उसे न तेरी पीर ॥ हृदय० ॥
यह संसार स्वार्थ का सारा, अपना तक न शरीर ।
प्रेम-तत्त्व के ज्ञाता होंगे विरले जन मतिधीर ॥ हृदय० ॥

[आनन्दी का प्रवेश]

आनन्दी—(मुसकराकर) महारानी ! मैं भी गाना सुन सकती हूँ ?

तिष्यरक्षिता—चल जलमुँही ! बड़ा आनन्द आ रहा था । सब मिट्टी में मिला दिया ।

आनन्दी—आनन्द मिट्टी में मिल गया तो क्या हुआ, आनन्दी तो प्रत्यक्ष है ।

तिष्यरक्षिता—(हँसकर) तुझसे क्या ? आनन्दी ! आज महाराज ने आने में अधिक विलम्ब किया । जा, देख तो, क्या कारण है ।

आनन्दी—थोड़े समय में ही महाराज के बिना इतनी व्याकुलता ! तनिक प्रतीक्षा करो। धैर्य धरो, अभी आते होंगे।

तिष्यरक्षिता—आनन्दी ! तू बड़ी दुष्ट है, कामचोर है। यह तो न हुआ कि दो पग चलकर पता लगा लेती।

आनन्दी—महारानी ! राजा-महाराजाओं को राजकार्य की देख-रेख करनी होती है। कुछ आवश्यक कार्य आ पड़ा होगा, अन्यथा महाराज आपसे मिलने में विलम्ब क्यों करते ?

तिष्यरक्षिता—तू कल्पना ही करेगी या कुछ वास्तविक कार्य भी ?

आनन्दी—आज्ञा हो तो मनोविनोद की कुछ सामग्री जुटा दूँ। यह तो वास्तविक कार्य होगा।

तिष्यरक्षिता—बस, तू सदा गाने का बहाना ढूँढ़ा कर।

आनन्दी—आप रुष्ट न हों। (हँसकर) आप तो गायन मन्त्र का प्रभाव जानती हैं। महारानी जी ! वृद्ध महाराज इसी मन्त्र द्वारा आपके वश में हो गये।

तिष्यरक्षिता—तू बहुत मुँह लगती जाती है ! गायन के साथ ही रूप-छवि और कला-कौशल भी चाहिए। यही विशेषता मुझमें थी, जिसने मुझे महारानी-पद दिलाया और तू दासी की दासी ही रही। (हँसती है, दर्पण देखती हुई) देख, यह यौवन और सुन्दरता का अनूठा मिश्रण !

आनन्दी—महारानी ! मुझमें सभी बातें न सही, एक-दो तो हैं। आज्ञा दो तो एक-आध तान सुना दूँ। इससे प्रतीक्षा की घड़ी दुःखदायिनी प्रतीत न होगी।

तिष्यरक्षिता—तू बड़ी धूर्त है ! ऐसे न मानेगी। अच्छा, सुना।

(आनन्दी गाती है)

प्रेम की कैसी अद्भुत रीति !

प्रेमाकृष्ट कुरङ्ग व्याघ्र कब लखते नीति अनीति।
प्रेम-भँवर में फँसे भँवर को क्या कण्टक की भीति।
चातक, मोर, चकोर प्रेम की डोर बँधे कर प्रीति।
मीन पतङ्ग जानते समुचित मिलन-विरह की रीति।
प्रेम नित्य है, प्रेम सत्य है, ईश्वर प्रेम-प्रतीति।
प्रेम-रहित जीवन बन्धन-सम मेरी सुदृढ़ प्रतीति।

तिष्यरक्षिता—धन्य है ! धन्य है ! आनन्दी !!

आनन्दी—अब आप भी कुछ गाकर सुनायें।

तिष्यरक्षिता—मैं पहले गा चुकी हूँ। अब मन नहीं लगता।

आनन्दी—क्या गाने से मन ऊब गया ?

तिष्यरक्षिता—अच्छा, क्या सुनेगी ?

[महाराज का प्रवेश]

अशोक—जो सुनाओ।

(तिष्यरक्षिता का महाराज के सत्कार के लिए उठना; और आनन्दी का प्रस्थान)

तिष्यरक्षिता—आज आपने आने में बहुत विलम्ब किया। देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी।

अशोक—आज एक ऐसा समाचार मिला है जिस पर तत्काल विचार करना उचित था।

तिष्यरक्षिता—(साश्चर्य) ऐसा क्या समाचार था ?

अशोक—तक्षशिला में पुनः विद्रोह आरम्भ हो गया है।

तिष्यरक्षिता—(सविषाद) विद्रोह ! विद्रोह-शान्ति का उपाय सोच लिया ?

अशोक—हाँ, सोच लिया। मैंने वहाँ स्वयं जाने का निश्चय किया है।

तिष्यरक्षिता—(सविस्मय) क्या आप जायँगे ? इस अवस्था में आपका जाना उचित नहीं।

अशोक—तिष्ये ! तुमने सुना होगा कि तक्षशिला में पहले भी कई बार विद्रोह फैल चुका है। एक बार विद्रोह-शान्ति के लिए पूज्यपाद पिताजी ने मुझे वहाँ का उपराज बनाकर भेजा था। मैं वहाँ के वातावरण से भली भाँति परिचित हूँ। मेरा जाना हितकर होगा।

तिष्यरक्षिता—(विचार करके) यदि कुणाल को वहाँ भेज सकूँ तो अत्युत्तम है। (प्रकट) महाराज! आप कष्ट न उठाएँ। मेरी सम्मति में तो कुमार कुणाल का जाना ठीक रहेगा।

अशोक—प्रिये ! तुम राजनीतिक बातों को क्या जानो ? वहाँ प्रजा में विद्रोहाग्नि फैल रही है। मैं वहाँ की स्थिति से भली भाँति परिचित हूँ। मैं पहले वहाँ का विद्रोह शान्त कर चुका हूँ, अतः मुझे जाने दो।

तिष्यरक्षिता—महाराज ! मेरी बात भी सुनिए। मैं राजनीतिज्ञ नहीं हूँ। परन्तु मेरा यह एक प्रश्न है कि जब आप वहाँ

विद्रोह-दमन को भेजे गये थे, तब आपको ऐसा अभ्यास कब प्राप्त हुआ था ? आवश्यकता आविष्कार की जननी है। समय पड़ने पर बुद्धि स्वयमेव विकसित हो उठती है।

अशोक—तब भी वयोवृद्ध और युवा में अन्तर तो अवश्य है।

तिष्यरक्षिता—महाराज! कुमार कुणाल पूर्णवयस्क है। वह विद्रोह शान्त कर सकेगा। आप उसे भेजें, स्वयं कष्ट न उठायें। जब आप विद्रोह शान्त करने गये थे तब क्या आप वयोवृद्ध थे ?

अशोक—तिष्ये! हठ मत करो। धैर्य से सोचो। देखो, अग्रामात्य राधागुप्त की भी यही सम्मति है। वे मेरा जाना अत्युत्तम बताते हैं।

तिष्यरक्षिता—हाँ, अत्युत्तम रहेगा, परन्तु मुझे अतिमय उपाय की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। यह साधारण काम है, कुमार कुणाल इसके करने में समर्थ है। वह पराक्रमी और कुशाग्र-बुद्धि है। यदि वह इस कार्य को पूर्ण कर सके, तो इतनी लम्बी यात्रा का कष्ट आप क्यों उठावें ? कुमार को अवसर देना आपका कर्तव्य है। यदि आवश्यकता पड़े, तो आप जा सकते हैं। आपका जाना अन्तिम उपाय है।

अशोक—(स्वगत) बात तो ठीक जँचती है। (प्रकट) अच्छा, कल शीघ्र ही कुमार को सूचना दूँगा।

तिष्यरक्षिता—(सहर्ष) ठीक है। अब विश्राम कीजिए।

[पट-परिवर्तन

———

आठवाँ दृश्य

स्थान—महाराज अशोक का राजभवन

समय—प्रातःकाल

[महाराज अशोक कुमार कुणाल की प्रतीक्षा कर रहे हैं]

अशोक—तिष्यरक्षिता ठीक कहती है कि कुमार को विद्रोह शान्त करने का अवसर देना चाहिए। कुमार की इच्छा जानकर उसे वहाँ जाने का आदेश करूँगा। किन्तु एक दुःख होगा—कुमार को देखे बिना नेत्र निरर्थक हो जायँगे; हृदय अशान्त रहेगा।...

[कुमार का प्रवेश]

कुमार—(यथेष्ट शिष्टाचार के पश्चात्) पिताजी! आज आप चिन्ताग्रस्त दिखाई देते हैं। क्या कारण है?

अशोक—कुमार कुणाल! समाचार मिला है कि तक्षशिला में विद्रोह फैल रहा है। इसी लिए मैं चिन्तित हूँ। मैंने इसी विषय पर परामर्श लेने के लिए तुम्हें बुलाया है।

कुणाल—(साश्चर्य) तक्षशिला में विद्रोह! तक्षशिला हमारे लिए सदा से चिन्ताप्रद प्रदेश रहा है। इसको ऐसी सुव्यवस्था होनी चाहिए कि विद्रोह दबकर फिर कभी न उठे।

अशोक—कुणाल ! यह तुम जानते हो कि राजा के निकट उपस्थित न होने पर राजपुरुष अत्याचारी हो जाते हैं। अत्याचारों से पीड़ित प्रजा में राज्यशासन के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। यही अविश्वास विद्रोह का मूल कारण है।

कुणाल—पूज्यपाद ! प्रजा पर कौन सा अत्याचार हुआ है ?

अशोक—कुमार ! सो तो ठीक नहीं कहा जा सकता; परन्तु यह बात प्रत्यक्ष है कि जन-साधारण यों हो राज्य-शासन के विरुद्ध कभी सिर नहीं उठाते। जब घोर विपत्तियाँ घेर लेती हैं, तभी ऐसी स्थिति उपस्थित होती है कि वे राजदण्ड के भय से निर्भय होकर ऐसे उपद्रव करने पर उद्यत हो जाते हैं।

कुणाल—पिताजी ! प्रजा का अविश्वास पुनः विश्वास में कैसे परिवर्तित किया जा सकता है ? प्रजा का विदीर्ण हृदय फिर कैसे जोड़ा जा सकता है ?

अशोक—कुमार ! प्रजा में विश्वास उत्पन्न करना असुलभ नहीं है। मैं जब उज्जैन में उपराज था, तब पिताजी ने मुझे तक्षशिला में विद्रोह-दमन के लिए भेजा था। मैंने वह कार्य, विना किसी विशेष कठिनाई के, पूर्ण कर लिया था।

कुणाल—पूज्यपाद ! इस समय आपने क्या निश्चय किया है ? आप आज्ञा दें, मैं वहाँ जाकर शीघ्र ही शान्ति स्थापित करने का यत्न करूँ।

अशोक—(सहर्ष) प्रिय कुणाल ! यह तो ठीक है कि तुम जाकर विद्रोह दमन करो परन्तु तुम्हें राजाओं की कूटनीति का

सम्यक् ज्ञान नहीं, अनुभव नहीं। तुम्हारे जाने से कार्य क्योंकर सफल होगा ?

कुणाल—पूज्य देव! आपका कथन ठीक है। मैं कूटनीति से परिचित नहीं हूँ तथा कहीं उपराज आदि का कार्य भी नहीं कर पाया हूँ, तथापि मुझे विश्वास होता है कि मैं आपका अभीष्ट सिद्ध कर पाऊँगा। राजनीति और प्रेम दो भिन्न मार्ग हैं। राजनीति भी प्रेम-पथ का प्रदर्शन करती है, परन्तु वह प्रेम कृत्रिम है। वह वास्तविक प्रेम से पृथक् है। विद्रोह-दमन के लिए अकृत्रिम प्रेम की आवश्यकता है, अविश्वास का ध्वंस करने के लिए विश्वस्त प्रेम का बीज चाहिए, वत्सलता का अभिषिंचन चाहिए, दुःख-कष्टहारी सहानुभूति का कल्पद्रुम चाहिए। इसका फल शान्तिप्रद राज्य होगा।

अशोक—पुत्र! मैं तुम्हारे वचन सुनकर प्रसन्न हूँ। मुझे आशा होती है कि तुम इस कार्य को पूर्ण कर सकोगे। परन्तु यह बात ध्यान में रखना कि प्रजा के प्रति अधिक नम्रता से कहीं यह भ्रम न फैले कि राजशक्ति दुर्बल हो गई है, विद्रोह के लिए आवश्यक राजदण्ड का अभाव हो गया है; अन्यथा लोग और उद्दण्ड हो जायँगे।

कुणाल—महाराज! क्या आपको कलिङ्ग देश की विजय का परिणाम विस्मृत हो गया? सहस्रों प्राणियों के प्राण-परित्याग का भय जाता रहा? क्या आपकी यह इच्छा

है कि मैं सैन्य-बल सहित तक्षशिला नगरी को ऊजड़ ग्राम बना दूँ, और प्रत्येक विद्रोही का नाम मिटा दूँ ? यह विजय शस्त्र-विजय होगी, आन्तरिक हृदय की विजय नहीं। स्थायी विजय की प्राप्ति हृदय को वश में करने से मिलती है, शस्त्र भय दिखाकर नहीं। आपने राज्य का जो इतना विस्तार किया है, वह शस्त्र की शरण लेकर नहीं; वरञ्च बौद्ध मत के प्रताप से, महात्मा तथागत की शरण से, और अहिंसा के प्रेम से। जब तक्षशिला एक प्रधान बौद्ध विश्व-विद्यालय है तो मुझे निश्चय है कि मैं बौद्ध मत के अनुयायियों को बौद्ध मत की शिक्षा का स्मरण कराकर, बौद्ध साम्राज्य के अन्तर्गत सम्मिलित रहने का उपदेश देकर, अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर सकूँगा। आप कुछ चिन्ता न करें।

अशोक—पुत्र कुणाल! मैं तुम्हारी सद्बुद्धि पर प्रसन्न हूँ। परिस्थिति की जाँच करके जो आवश्यक हो, वही करना। आशा है, भगवान् तुम्हें मनोवाञ्छित फल प्रदान करेंगे।

कुणाल—पिताजी! मेरा विचार है कि मैं शीघ्र ही वहाँ के लिए प्रस्थान कर दूँ। आपकी क्या आज्ञा है ?

अशोक—प्रिय कुणाल! अच्छा, जाओ। भगवान् तुम्हारा मङ्गल करें। अग्रामात्य ने प्रस्थान के लिए आवश्यक प्रवन्ध कर रखा है। सेना आदि का भी प्रवन्ध हो चुका है।

कुणाल—पूज्यपाद ! मैं भी अपना कुछ प्रवन्ध करके अभी उपस्थित होता हूँ।

अशोक—(आलिङ्गन-पूर्वक) प्रिय कुणाल ! एक बात का स्मरण रखना। मैं वृद्ध हूँ। तुमसे पृथक् रहना नहीं चाहता। परन्तु भाग्य बलवान् है। आशा है, तुम शीघ्र सकुशल लौटकर मेरा आनन्द बढ़ाओगे। (मुँह की ओर देखकर) तुम्हारे कमल-नयन, तुम्हारा विकसित चन्द्रमुख देखे विना मेरी वही गति होगी जो चाँद देखे विना चकोर की होती है।

कुणाल—पिताजी, धैर्य रखिए। मेरा उत्साह बढ़ाइए। भगवान् मङ्गल करेंगे। (प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

—

नवाँ दृश्य

स्थान—तिष्यरक्षिता का भवन

समय—मध्याह्न

[तिष्यरक्षिता प्रसन्नवदन बैठी है]

तिष्यरक्षिता—अहहह ! कुमार कुणाल मेरे मार्ग का काँटा था। काँटे को मैंने बाहर निकाल फेंका, ऐसे स्थान में फेंका है कि जलकर भस्म हो जायगा। विद्रोहियों द्वारा शरीर जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर सब गर्व चूर्ण हो जायगा। चला है सेनापति बनकर! देख लूँगी कि काञ्चनमाला का भी पति बना रहता है या उससे भी हाथ धोकर इस लोक से कूच करता है। अरेरे! मेरे तिरस्कार का उसे शीघ्र फल मिलेगा। मैं महारानी हूँ, महाराज की सब रानियों से मेरा सत्कार अधिक होना चाहिए। हाँ, अधिक सत्कार!…

[आनन्दी का प्रवेश]

आनन्दी—नाश हो गया ! नाश हो गया !!

तिष्यरक्षिता—क्या हुआ ? कह, कह।

आनन्दी—सुना है कि कुमार कुणाल तक्षशिला के उपराज बनाकर भेजे गये हैं। वे सैन्य-बल-सहित वहाँ के लिए प्रस्थान कर चुके हैं।

तिष्यरक्षिता—पगली ! हर्ष की सूचना पर विषाद कैसा ?

आनन्दी—(साश्चर्य) हर्ष ! हर्ष की सूचना ! महारानी, क्या कुमार से मेल हो गया ?

तिष्यरक्षिता—आनन्दी ! आँख की अन्धी ! क्या तू नहीं जानती कि कुणाल मेरी वृद्धि में बाधक था, मेरे मार्ग का काँटा था ? यहाँ से उसके दूर जाने में मेरा हित होगा, कल्याण होगा और सुख होगा।

आनन्दी—यह कैसे ?

तिष्यरक्षिता—तू रही मूर्ख की मूर्ख ! क्या तूने नहीं सुना कि तक्षशिला में विद्रोह फैल रहा है ? विद्रोहाग्नि में राजनीति से अनभिज्ञ कुमार, अग्नि में पतङ्ग के समान, भस्म हो जायगा। उपराज बनने से क्या ? समझी ?

आनन्दी—हाँ, समझ गई। परन्तु सुना है कि कुमार ने महाराज से वहाँ, विद्रोह-दमन के लिए, भेजे जाने का स्वयं प्रस्ताव किया था।

तिष्यरक्षिता—आनन्दी ! तुझे बुद्धि न आई। सुन, महाराज ने जब तक्षशिला में विद्रोह का समाचार सुनाया तो उनका तात्पर्य यही था कि विद्रोह किसी प्रकार शान्त करने का उपाय सोचना चाहिए। विद्रोह की शान्ति के लिए कुमार क्या स्वयं पीछे हटकर महाराज को इस अवस्था में वहाँ जाने के लिए कहता ? इच्छा होती या न होती, किन्तु कुमार को जाने की इच्छा प्रकट करनी ही उचित थी।

आनन्दी—यदि कुमार का तक्षशिला जाना आपके लिए कल्याणकारी है तो फिर मुझे चिन्ता कैसी ? मुझे तो यह भय हुआ था कि कुमार अब उपराज बन गये हैं, फिर महाराज-पदवी पर अधिकार कर लेंगे। उस समय आप पर कठिनाइयों का पर्वत टूट पड़ेगा। वैसे देखने में तो कुमार बड़े सौम्य और दयालु दिखाई देते हैं, परन्तु आपसे चिढ़ते हैं, जलते हैं।

तिष्यरक्षिता—आनन्दी ! मैं महारानी बन गई तो इसमें मेरा क्या दोष ? दोष महाराज का है, उनसे पूछो। भला महारानी बनना इतना सुगम है ! इसके लिए रूप-यौवन चाहिए, गुण चाहिए, कला-कौशल चाहिए, आकर्षण-शक्ति चाहिए। तब कहीं वाञ्छित फल की प्राप्ति हो सकती है। इन्हीं विशेषताओं के द्वारा मैंने वृद्ध महाराज को वश में किया है। (मुट्ठी दिखाकर) उनका हृदय इस मुट्ठी में है। वे कहीं जा नहीं सकते। कुमार मेरा क्या बिगाड़ सकता है ?

आनन्दी—महारानी ! यह तो मैं मानती हूँ कि आपमें वह रूप-राशि है जो रति को पराजित करती है, वह छवि है जो हृदय को मथ डालती है, वह सङ्गीत-विद्या है जो शर्मिष्ठा को लज्जित करती है और वह उमङ्ग है जो समुद्र के ज्वार का उपहास करती है।

तिष्यरक्षिता—वाह, आनन्दी ! अब तो तू कवि बनने लगी। तेरी विचारशक्ति बहुत दूर उड़ने लगी। इसका कारण क्या है ?

आनन्दी—महारानी ! कारण क्या होगा ? कारण तो आप स्वयं हैं। जब आप प्रसन्न हैं, मैं भी प्रसन्न हूँ। जिसमें आपका सुख है, कल्याण है, हित है, उसी में मेरा भी सुख, कल्याण और हित है। आनन्द-कानन में विहार करते हुए प्राणी को दूर की सूझा करती है। इसमें आश्चर्य कैसा ?

तिष्यरक्षिता—सखी, मैं मानती हूँ कि तू मेरी परम हितैषिणी है। इसी से ऐसा कहती है। यदि भगवान् की कृपा से मेरी गोद भर जाय, तो देखना मेरी शक्ति कितनी बढ़ती है ! फिर उसके सिवा इस साम्राज्य का अधिकारी और हो कौन सकता है ?

आनन्दी—यह बात तो प्रत्यक्ष ही है। महारानी की सन्तान का सर्व-प्रथम अधिकार है। तब आनन्द-मङ्गल का क्या ठिकाना ! कुमार कुणाल की दशा का क्या कहना ! और...

तिष्यरक्षिता—(सक्रोध) कुमार का मेरे सामने नाम मत ले। उसका स्मरण कर मुझे उसके द्वारा अपने अपमान की याद आ जाती है, मेरा रक्त उबलने लगता है। अब आशा है, उसका नाम इस संसार में केवल कथा-शेष रह जायगा। तब मेरा क्रोध शान्त हो जायगा।

[पटाक्षेप

—

दूसरा अङ्क

पहला दृश्य

स्थान--तक्षशिला में राजसभा

[उपराज कुणाल, महामात्र, प्रादेशिक आदि राजपुरुष
तथा प्रजाजन बैठे दिखाई देते हैं; प्रजा के एक
प्रतिनिधि का भाषण हो रहा है]

"यशस्वी उपराज धर्मविवर्धन को मैं प्रजा की ओर से विश्वास दिलाता हूँ कि हम सब चक्रवर्ती सम्राट् देवानांप्रिय प्रियदर्शी श्री अशोक के परम भक्त हैं और अपने प्रान्त को उनके विस्तृत साम्राज्य का अंश बना रहने में अपना सौभाग्य समझते हैं। उन्हीं की धर्मनिष्ठ प्रकृति के प्रभाव से हम सबका हृदय भगवान् बुद्ध की अनुपम शिक्षा से उज्ज्वल हुआ है। ऐसे देव-सदृश महाराज के द्वारा हमारा ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार का सुधार हुआ है। क्या ऐसे लोकप्रिय और लोकहितैषी सम्राट् के गुणों को हम भूल सकते हैं, ऐसे प्रजावत्सल और लोक-कल्पद्रुम सम्राट् के द्वारा प्राप्त लाभ और दयार्द्र वर्ताव की ओर से आँख मूँद सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं। अतएव हमें सम्राट् के प्रति विरोध क्यों होता?

हम भली भाँति जानते हैं कि महाराज ने हमारे हित के लिए ही रज्जूक आदि राजपुरुषों को नियुक्त किया है। किन्तु यहाँ का वातावरण ऐसा है कि, एक-दूसरे का अनुकरण करते हुए, अधिकांश राजपुरुष हम निर्बलों पर मनमाना अत्याचार करते हैं। इसी लिए कुछ पुरुप इस राज्य-सञ्चालन से विरक्त हो गये हैं। परन्तु अब युवराज कुणाल के उपराज-रूप में यहाँ उपस्थित हो जाने पर हमें आशा बँध गई है कि हम अब पहले की तरह पैरों तले नहीं रौंदे जायँगे, वरञ्च हमारा जीवन अब सुख और शान्ति का जीवन होगा। जो अमात्य हमारे साथ पहले क्रूर वर्ताव करते थे वे अब आप जैसे धर्मशील, प्रजावत्सल दीनबन्धु और सत्यासत्य-निरीक्षक के सम्मुख सत्पथ से विचलित होने का साहस न कर सकेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि उपराज धर्मविवर्धन कुणाल हमारे ऊपर छाये हुए आतङ्क की घटा को न्याय-रूपी वायु के झोंके से शीघ्र ही उड़ा देंगे। मैं प्रजा की ओर से उपराज को विश्वास दिलाता हूँ कि हम सम्राट् अशोक के, किसी अन्य प्रान्त की प्रजा जैसे ही परम भक्त हैं। उपराज और सम्राट् अपने हृदय से हमारे प्रति मनोमालिन्य को दूर कर दें और हमें पूर्ववत् अपनी प्रिय भक्त प्रजा मानें।"

उपराज कुणाल—प्रिय सज्जनो, अमात्यगण तथा राजपुरुषो! सबसे पहले मैं आप सबको आशातीत आदर-सम्मान करने के लिए हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। मैं यहाँ आपके

पास चक्रवर्ती सम्राट् देवानांप्रिय प्रियदर्शी श्री अशोक की आज्ञा से शान्ति स्थापित करने के लिए भेजा गया हूँ। आपको इस वचन से स्पष्टतया यह जान पड़ेगा कि सम्राट् वास्तव में इस विचार में थे कि तक्षशिला नगरी विद्रोहाग्नि से जल रही है; राज-विद्रोह उग्र रूप धारण कर चुका है; अतएव दण्ड और सैन्यबल के द्वारा यहाँ अपना प्रभुत्व स्थिर रखना होगा। किन्तु नहीं, महाराज का ऐसा अनुमान न था। वे अनुभव कर रहे थे कि प्रजा पर कुछ अत्याचार हुआ है, दीन-दुखियों को सताया गया है, स्वतन्त्रता में रोक-टोक की गई है, न्याय के स्थान में अन्याय हुआ है। अतएव दूरदर्शी सम्राट् ने अन्य किसी राजपुरुष को न भेजकर मुझे यहाँ आने का आदेश किया। मुझे यहाँ निःशस्त्र आने में भी कुछ भय न था। मैं जानता था कि मौर्य-वंश ने अपनी जड़ कहाँ तक फैला ली है; हमारी प्रजा राज्य के प्रति भक्ति और अनुराग में कहाँ तक दृढ़ है। परन्तु राजसी ठाठ के लिए मुझे यहाँ सेना सहित आना पड़ा। मैं अब यहाँ तक्षशिला-निवासियों के बीच खड़ा हूँ। यदि किसी व्यक्ति को मौर्य-कुल के प्रति द्वेष हो, महाराज अशोक से कोई बदला लेना चाहता हो, तो वह मेरे सम्मुख होकर मेरे शरीर पर अपना क्रोध शान्त कर सकता है। मुझे इस शरीर पर कुछ मोह नहीं। यदि किसी प्रकार इस शरीर से किसी का कुछ

काम हो सके, इसके द्वारा यदि किसी का क्रोध शान्त हो सके, तो मैं तृप्त हो सकूँगा। मेरी तृप्ति के साथ-साथ एक दूसरे व्यक्ति की भी तृप्ति हो सकेगी।...

प्रजा का प्रतिनिधि—यशस्वी उपराज ! आप यह अत्यन्त तीक्ष्ण वचन कह रहे हैं। हममें ऐसा कोई अभागा नहीं जिसकी आत्मा ऐसे घृणित विचारों से कलुषित हो। आपके ये वचन हमारे हृदयों के लिए वज्राघात हैं।

कुणाल—सज्जनो ! मेरा यह तात्पर्य नहीं कि मुझे आपकी भक्ति तथा अनुराग पर सन्देह है। मेरा यह भी आशय नहीं कि मेरे वचन आपको असह्य प्रतीत हों। मेरी तो यह इच्छा है कि मैं प्रत्येक व्यक्ति को तृप्त कर सकूँ। यदि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं तो मुझे अतीव हर्ष है। हर्ष इस-लिए नहीं कि मेरा जीवन बच गया; किन्तु इसलिए कि मेरे कुल के प्रति प्रजा की दृढ़ भक्ति है, मेरे पूज्य पिता सम्राट् अशोक के व्यवहार से किसी को दुःख नहीं। प्रजा को जो दुःख है वह किसी अन्य द्वार से है। वह अन्य द्वार क्या है, कैसा है, यह मैं जाँच करके निश्चय करूँगा। आततायियों के ऊपर मैं तनिक भी दया न करूँगा, दण्डनीय लोग अवश्य दण्ड पायेंगे। आप मुझे कुछ अवधि दें। मैं इस अवधि में आपके दुःख-कण्टक दूर कर दूँगा। न्याय के स्थान पर न्याय होगा, दण्ड के स्थान पर दण्ड।

प्रजाजन—हम भी यही चाहते हैं। हमारी भी यही इच्छा है।

प्रधान अमात्य—यशस्वी उपराज, अमात्यजन, राजपुरुष तथा उपस्थित सज्जनो! हम सबको इस समय अपार हर्ष हुआ है। चक्रवर्ती सम्राट् देवानांप्रिय प्रियदर्शी श्री अशोक के पुत्र यशस्वी उपराज श्री धर्मविवर्धन कुणाल ने यहाँ दर्शन देकर हमें कृतार्थ किया है। यह हमारा अहोभाग्य है कि हमें इनके दर्शन प्राप्त हुए। इन दर्शनों के प्राप्त होने का कारण हमें, अर्थात् राजपुरुषों को, ही बताया जाता है। उपराज हम पर अत्याचार का सन्देह करते हैं, प्रजाजन हम पर क्रूरता का दोष लगाते हैं। हम दोनों ओर से गये। न तो महाराज द्वारा यश प्राप्त करने के अधिकारी हुए, न प्रजावर्ग से आशीर्वाद मिलने के पात्र। राजसेवा बड़ा कठिन कार्य है। कभी राजकोप के आ घेरने का भय होता है, कभी प्रजामण्डल द्वारा अपशब्दों की भरमार का। यदि राजसेवा में राजपक्ष की ओर कुछ न्यूनता हुई तो राजा ने उत्तर माँग लिया, यदि प्रजा के पक्ष में कुछ न्यूनता हुई तो प्रजा ने कलङ्क लगा दिया। दोनों पक्षों का ध्यान रखकर चलना बड़ी टेढ़ी खीर है। इस कण्टकमय पथ पर सीधा चलना प्रत्येक व्यक्ति के लिए असम्भव सा है। एक ओर तनिक झुकाव हुआ, दूसरी ओर से तत्काल कोपपात्र बनना पड़ा। ऐसे मार्ग पर चलने के लिए, मैं समझता हूँ कि, विरले पुरुष ही

उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक पुरुष को ऐसे कर्त्तव्य-शील राज-पुरुष की कठिनाई का ध्यान रखना चाहिए। न्यूनता प्रत्येक प्राणी में होती है। हर एक से असावधानी होती है। यदि किसी कारण किसी राजाधिकारी का कार्य सन्तोष-जनक नहीं, तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि सूचना मिलने पर मैं पहला पुरुष होऊँगा जो उस कर्मचारी को पदच्युत करने में हाथ उठाऊँगा और उचित दण्ड दिलाऊँगा। साथ ही मान्यवर उपराज महोदय से मैं निवेदन करता हूँ कि जिस-जिसको वे अपराधी पावें, उस-उसको दण्ड दिये बिना न छोड़ें, चाहे वह अपराधी बड़े से बड़ा राजपुरुष हो या प्रजा में से ही कोई क्यों न हो। यह सुनकर आप चकित होंगे कि मैंने "प्रजा में से ही कोई क्यों न हो" क्यों कहा है। मान्यवर उपराज तथा अन्य उपस्थित सज्जनों से मेरा नम्र निवेदन है कि वे शान्तिपूर्वक दोनों पक्षों का वृत्तान्त सुनें। सम्भव है, दोनों पक्षों का सप्रमाण वृत्तान्त सुनने पर आपकी सम्मति में कोई परिवर्तन हो जाय। इस समय आप राज-पुरुषों पर ही सारा दोष लगाते हैं, तब आपको दोष के कुछ अन्य पात्र भी मिल जायँ। मैं सबसे निवेदन करता हूँ कि सब लोग शान्ति और धैर्य से काम करें। भगवान् कल्याण करेंगे।

कुणाल—अमात्यगण, राजपुरुष तथा उपस्थित सज्जनो! मैंने दोनों पक्षों के नेताओं की वक्तृताएँ सुन लीं। मैं यहाँ की

स्थिति से ठीक परिचित नहीं। मुझे यहाँ आये अभी अल्प समय ही हुआ है। अतएव मैं क्योंकर किसी पक्ष को दोष लगाऊँ? दोनों पक्षों को मेरा यही आदेश है कि वे अब परस्पर वैर-भाव छोड़ दें। कर्त्तव्य पर स्थिर रहकर अपना कार्य-सञ्चालन करें। इस अशान्ति की पूर्णतया खोज की जाय और अपराधियों को यथोचित दण्ड दिया जाय। जिन पर अत्याचार हुआ है उन्हें, बदले में, धन आदि दिया जायगा। इस समय आप सब सम्राट् के आदेशानुसार शान्त होकर अपना-अपना कार्य करें और विश्वास रखें कि मौर्य-राज्य के न्याय पर कलङ्क न लगने पायेगा।

प्रजाजन—हमारी यही प्रार्थना है, हमारी यही प्रार्थना है।

कुणाल—हाँ, यही होगा। अब सभा विसर्जित होती है।

(सबका प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

———

दूसरा दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र का विशाल मार्ग

[कुछ कोलाहल सुनाई पड़ता है]

अहहहहह ! अहहहहह ! वाह उपराज कुणाल ! धन्य हो ! धन्य हो !! वीरता इसे कहते हैं। न एक योद्धा मृत्यु को प्राप्त हुआ...। अरेरे क्या कह दिया "मृत्यु को प्राप्त हुआ"। नहीं-नहीं, ऐसा नहीं। यह कहना चाहिए, न एक योद्धा क्षत हुआ, न एक शस्त्र से काम पड़ा, न एक अस्त्र छोड़ा। और, और अहहहह ! अहहह ! और विद्रोह शान्त हो गया। सुनो, पाटलिपुत्र-निवासियो ! विद्रोह शान्त हो गया। आनन्द मनाओ। उत्सव करो, उत्सव।

एक—अरे तुम्हें यह शुभ सूचना किसने दी ? तुम हर्ष से फूले नहीं समाते हो। क्या कोई बड़ा उपहार मिला है ?

पहला—उपहार ! अरे उपहार का क्या कहना ? मेरे भाई धनगुप्त को महाराज से पारितोषिक मिला। वह यह शुभ सूचना लेकर सम्राट् के पास आया था। सम्राट् ने अपनी बहुमूल्य अँगूठी उतारकर मेरे भाई को उपहार में दे दी।

एक—केवल एक अँगूठी से इतना हर्षोन्माद ! वाह, धनगुप्त के भाई, ख़ूब भेंट पाई।

पहला—अरे भद्र पुरुष ! मेरा नाम क्यों नहीं लेते नाम ? क्या बलगुप्त के नाम से भय लगता है ?

एक—बड़े बली हो न जो हम बलगुप्त से भय खाते ! इन्द्रगुप्त से कभी सामना नहीं पड़ा।

दूसरा पुरुष—अरे, अँगूठी की कहो। यदि अँगूठी धनगुप्त को मिली तो तुम्हें इससे क्या ?

बलगुप्त—अरे ! घरवालों के नाम चार गाँव भी हुए हैं। यह क्या हर्ष की बात नहीं ?

तीसरा पुरुष—(आश्चर्य से) चार गाँव ?

बलगुप्त—हाँ-हाँ, चार गाँव। जाओ, जाओ; तुम हमारे भाग्य से ईर्ष्या करते हो, हम जाते हैं। (जाने लगता है)

चौथा पुरुष—(हाथ खींचकर) अजी, जाते कहाँ हो ? हम आपसे कुछ छीन नहीं लेते। रुद्रदत्त से छुटकारा पाना सहज नहीं। पहले एक प्रश्न का उत्तर देते जाओ।

(बलगुप्त खड़ा हो जाता है)

रुद्रदत्त—हमने सुना है कि महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं। सम्राट् के दर्शन कैसे हुए ?

बलगुप्त—अरे तुम निकले न पुराने सनकी ! क्या हम पर विश्वास नहीं ? क्या ऐसे शुभ समाचार के लिए रोक-टोक हो सकती है ? दिखाऊँ वह जगमगाती मन ललचाती अँगूठी ! अँधेरे में उजाला हो जाय। अच्छा, जाने दो, दिखाने की कुछ आवश्यकता नहीं। तुम लोगों को रत्न, नीलम मणि, की क्या पहचान !

(रुद्रदत्त और इन्द्रगुप्त आगे बढ़कर बलगुप्त को पकड़ लेते हैं। एक बाँह खींचता है, दूसरा टाँग)

रुद्रदत्त—(बलगुप्त की ठोड़ी पकड़कर) क्यों रे! तूने ही रत्न-नीलम देखे हैं? आज रत्न का एक कण देख लिया तो आँखें फट गईं। कभी तुम्हारे पिता-पितामह ने भी रत्न देखा था?

बलगुप्त—(भयपूर्वक) बचाइयो, बचाइयो! मेरी अँगूठी छिन जायगी।

दोनों पुरुष—अरे! हम कोई चोर हैं या डाकू? सम्राट् अशोक के राज्य में दूसरे की वस्तु कौन हथिया सकता है? लाओ, दिखाओ अँगूठो! राज्य-पुरस्कार के छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं।

बलगुप्त—(टटोलकर) अरे! अँगूठी नहीं मिलती। क्या हुआ? (सोचकर) अरे, अँगूठी तो मैं भाई के पास छोड़ आया।

दर्शक जन—झूठ बोलता है, झूठ।

बलगुप्त—नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय। मैं झूठ कभी नहीं बोलता। (कान छूता है—बायें हाथ से दायाँ कान और दायें से बायाँ कान)

(दर्शक जन हँसते हैं। रुद्रदत्त और इन्द्रगुप्त भी हँसते हैं। बलगुप्त अवसर पाकर भाग जाता है। सब उसकी ओर देखते हैं। दूर से एक रथ दौड़ा आता है)

इन्द्रगुप्त—(रथ की ओर देखकर) रुद्रदत्त ! अब उसका मुँह क्या ताक रहे हो ? वह तो भाग निकला। अब एक ओर हट जाओ। देखो, वह रथ बड़े वेग से आ रहा है। (रथ की ओर सङ्केत करता है)

(लोग इधर-उधर हट जाते हैं। रथ पास से निकल जाता है।

रथ में नगर के प्रसिद्ध वैद्य कीर्त्तिसेन विराजमान हैं)

रुद्रदत्त—मैंने कहा था कि महाराज अस्वस्थ हैं। यह महाराज का रथ था। वैद्य कीर्त्तिसेन उधर जा रहे हैं।

इन्द्रगुप्त—(साश्चर्य) महाराज क्या वास्तव में रोगी हैं ? ऐसे श्रेष्ठ और पवित्र व्यक्ति की रोग से मुक्ति नहीं ? यही कारण है कि विद्रोह-दमन की सूचना पाने पर नगर में उत्साह दिखाई नहीं देता। भाई रुद्रदत्त ! उन्हें कौन सा रोग है ?

रुद्रदत्त—रोग का क्या पूछते हो ? बड़ा भयङ्कर रोग है।

इन्द्रगुप्त—रोग का नाम बताओ। भगवान् करें, हमारे सम्राट्—दयानिधि सम्राट्—शीघ्र नीरोग हो जायँ।

रुद्रदत्त—सुना है कि महाराज को मुख द्वारा विष्ठा होती है। रोम-रोम से मल निकलता है। वैद्य लोग इसको पुरीषोदावर्त रोग कहते हैं।

इन्द्रगुप्त—भगवान् कल्याण करें। तुम इस रोग को दुःसाध्य सा बताते हो।

रुद्रदत्त—हाँ, सब इसे दुःसाध्य ही कहते हैं। वैद्य लोग निरुपाय हैं। कोई औषध चमत्कार नहीं दिखाती।

इन्द्रगुप्त—नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय। समस्त प्रजा भगवान् से सम्राट् की स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिए हार्दिक भाव से वन्दना करे। आशा है, भगवान् प्रार्थना स्वीकार करेंगे।

रुद्रदत्त—हाँ, यह उपाय भी कर देखना चाहिए। चलो, इसका प्रबन्ध करें।

इन्द्रगुप्त—हाँ, चलो।

दोनों—नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय। (प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

———

तीसरा दृश्य

स्थान—तिष्यरक्षिता का प्रासाद

[तिष्यरक्षिता चिन्तितावस्था में]

तिष्यरक्षिता—हाय! मेरे ऊपर विपत्ति का पर्वत गिरने को है। मैं अपने आपको समझती थी भाग्यशालिनी! मेरा भाग्य प्रबल था, जो तुच्छ दासीत्व से महारानी का पद पाया। अब कोप क्यों होने लगा? कुठाराघात क्यों होने लगा? महाराज पर यह भयङ्कर रोग क्यों आ पड़ा? वैद्यों की बुद्धि कुण्ठित क्यों हो गई? कोई औषध अपना प्रभाव क्यों नहीं दिखाती? वैद्यराज कीर्त्तिसेन ने भी आशा नहीं बँधाई! हाय! अब क्या करूँ? कुछ नहीं सूझता। बुद्धि काम नहीं देती। सच है, दुखी कुछ सोच नहीं सकता। किससे परामर्श लूँ?

[आनन्दी का आवेग से आना]

आनन्दी—अन्धेर हो गया! महारानी! नाश हो गया!

तिष्यरक्षिता—आनन्दी! क्या समाचार है? शीघ्र कहो।

आनन्दी—क्या कहूँ? आपकी आशाओं पर पाला पड़ गया। कैसे कहूँ?

तिष्यरक्षिता—कुछ कहेगी या योंही सतायेगी?

आनन्दी—वैद्यराज कीर्त्तिसेन महाराज को देखकर अभी गये हैं। अग्रामात्य राधागुप्तजी के साथ कुछ देर तक विचार करते रहे हैं।

तिष्यरक्षिता—हाँ, यह तो मुझे मालूम है कि वैद्यजी अग्रामात्य के साथ चले गये थे। मुझसे तो जब चुप न रहा गया, तो हृदय की आग निकालने के लिए यहाँ आ गई। मुझसे महाराज की यह दशा देखी न गई थी।

आनन्दी—मैं उनकी बातचीत सुनने के लिए अग्रामात्य के द्वार के साथ सटकर खड़ी हो गई।

तिष्यरक्षिता—हाँ, क्या सुना ? शीघ्र कह।

आनन्दी—यही तो कहा नहीं जाता।

तिष्यरक्षिता—चल, कलमुँही ! कहना नहीं था तो यहाँ आई क्यों ? चल, निकल जा।

आनन्दी—महारानी ! क्रोध मत कीजिए। यह तो आप जानती ही हैं कि मैं सदैव आपका हित चाहनेवाली हूँ।

तिष्यरक्षिता—आग लगे तेरे मुह में ! जो बात पूछती हूँ उसका सिर-पैर नहीं और ख़ुशामद की बात ले उड़ी।

आनन्दी—महारानी ! कह तो रही थी। सुनिए, वैद्यराज ने अग्रामात्यजी से कहा है कि महाराज की दशा अच्छी नहीं। तब अग्रामात्यजी ने कहा कि इस दशा में युवराज कुमार कुणाल को यहाँ बुला लेना उचित है। महाराज को किसी प्रकार युवराज के बुला लाने के लिए सहमत कराता हूँ।

तिष्यरक्षिता—(सक्रोध) "सहमत कराता हूँ"; राधागुप्त ! अच्छा, देखूँगी कि कुणाल कैसे आता है। राधागुप्त ! तुम सदा मेरे पथ में बाधा डालते रहे। अब तुम्हें ऐसा छकाऊँगी कि छठी का दूध स्मरण हो आवेगा।

आनन्दी—क्या उपाय करोगी ?

तिष्यरक्षिता—उपाय तो अभी कुछ नहीं सोचा। मैं क्रोध और दुःख से व्याकुल हो रही हूँ। बुद्धि बेकार है। तू ही कुछ बता और मुझे इस कठिनाई से बचा।

आनन्दी—(सोचकर) यदि महाराज का स्वास्थ्य ठीक होने लगे तो कुमार का बुलाया जाना रुक सकता है। और यह काम मेरे वस का नहीं।

तिष्यरक्षिता—नहीं आनन्दी ! सोचो, कोई उपाय अवश्य सूझ पड़ेगा। तू मुझे कई बार दुःख-सङ्कट से छुड़ा चुकी है। आशा है, इस समय भी तू सहायता करेगी।

आनन्दी—कुछ आप भी बतायें। कदाचित् दोनों की बुद्धि मिलकर उपाय निकाल ले।

तिष्यरक्षिता—(सोचकर) इस रोग का कोई और रोगी मिल जाय तो कुछ उपाय हो सकता है।

आनन्दी—इसका कैसे पता चल सकता है ?

तिष्यरक्षिता—बड़ी सुगमता से।

आनन्दी—कैसे ?

तिष्यरक्षिता—सब वैद्यों को आदेश किया जाय कि इस रोग से पीड़ित रोगी का पता लगे तो शीघ्र ही उसे मेरे पास लाया जाय।

आनन्दी—इससे क्या लाभ ?

तिष्यरक्षिता—मैं उसी रोगी पर उचित ओषधियों की जाँच करूँगी और जो लाभ देने में प्रमाणित होगी, उसी ओषधि का महाराज पर प्रयोग करूँगी।

आनन्दी—ओषधियों की जाँच तो महाराज पर हो चुकी।

तिष्यरक्षिता—अरी, शल्य-चिकित्सा द्वारा ओषधियों की जाँच होगी। उस दशा में प्रत्येक ओषध तत्काल फल दिखायेगी।

आनन्दी—क्या मालूम रोगी कब मिले।

तिष्यरक्षिता—मैं अभी नगराध्यक्ष को आज्ञा करती हूँ कि इस प्रकार के रोगी का शीघ्र पता लगाया जाय; और वह मेरे सामने उपस्थित किया जाय।

आनन्दी—रोगी का पता तो वैद्यों से शीघ्र लग सकता है। नगराध्यक्ष से कहकर सब वैद्यों के नाम आज्ञापत्र निकलवा दीजिए कि ऐसा रोगी मिले तो वह शीघ्र यहाँ लाया जाय। वैसे नगराध्यक्ष भी अपने पुरुषों द्वारा ऐसे रोगी की खोज करे।

तिष्यरक्षिता—किन्तु राधागुप्त ने तो अब तक महाराज के हृदय में अपनी बात बैठा दी होगी। महाराज कदाचित् कुमार को बुलाने की आज्ञा दे चुके हों !

आनन्दी—नहीं, महारानी ! अभी राधागुप्त ने महाराज से इस विषय की चर्चा न की होगी। वैद्यराज महाराज को देखकर अभी गये हैं, तत्काल महाराज को कुमार के बुलाने की मन्त्रणा देने से महाराज के हृदय में यह विचार उठेगा कि हमारा रोग दुःसाध्य है। राधागुप्तजी बड़े चतुर हैं। अवसर पाकर, कुछ समय के अनन्तर, वे अपनी बात कहेंगे। उनके कहने से पहले आप अपनी घात जमा लें।

तिष्यरक्षिता—अच्छा, यही उपाय निश्चित हुआ। मैं महाराज की चिकित्सा का भार लेती हूँ। जब सब वैद्य इनके रोग को दुःसाध्य बता चुके हैं, तो मैं भी अपना यत्न क्यों न कर देखूँ ? यदि लाभ हुआ तो मेरे भाग्य, मेरे मान, मेरे आदर का क्या कहना ? यदि, भगवान् न करें, महाराज की हानि हुई तो वैद्य लोग तो अभी से निराश कर चुके हैं।

आनन्दी—भगवान् करें, आपका उपाय सफल हो। नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय। बुद्ध भगवान् से मेरी यही प्रार्थना है कि महाराज आपके उपाय से शीघ्र नीरोग हो जायँ।

तिष्यरक्षिता—मैं भी आज बुद्ध भगवान् के चरणों में बहुमूल्य उपहार भेजकर उनकी कृपापात्र बनूँगी और अभी जाकर महाराज से निवेदन करूँगी कि वे अपनी चिकित्सा कुछ समय तक मेरे ज़िम्मे कर दें। वैद्यों के आने का निषेध कर दें।

आनन्दी—किन्तु महाराज यह क्योंकर मानेंगे ?

तिष्यरक्षिता—(सोचकर) महाराज से यह कहूँगी कि आज रात को मुझसे किसी महापुरुष ने स्वप्न में कहा है कि तुम महाराज की चिकित्सा का भार ले लो; कल्याण होगा।

आनन्दी—(हँसकर) ख़ूब सूझा। बलिहारी है आपकी बुद्धि को! और कुमार का......

तिष्यरक्षिता—उसे अभी किसी प्रकार रोक दूँगी।

[पट-परिवर्त्तन

चौथा दृश्य

स्थान—अग्रामात्य राधागुप्त का गृह

[अग्रामात्य चिन्तित अवस्था में]

राधागुप्त—हा भगवन्! सम्राट् का क्या होगा? ऐसे लोकहितैषी धर्म-कर्म-निष्ठ व्यक्ति का इस निकृष्ट रोग द्वारा ग्रसा जाना! असम्भव है। परन्तु हा देव! सम्राट् की यह दशा मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। अविश्वास कैसे हो? मौर्य-कुल-दिवाकर काल-मेघ से घिर रहा है। मौर्य-साम्राज्य के पश्चिमोत्तर कोण में विद्रोहाग्नि प्रज्वलित हो रही है। विचित्र स्थिति है। यदि कुमार कुणाल को यहाँ की सूचना भेजकर बुलाता हूँ तो वहाँ विद्रोहियों से भय होता है। यदि नहीं बुलाता तो सम्राट् की ओर से आशङ्का है कि कहीं हमें इनका वियोग न देखना पड़े और कुमार अन्तिम दर्शन से भी वञ्चित न रह जायँ। हाय-हाय! मैं किन चिन्ताओं में फँस गया। मुझे उन दिनों का स्मरण आता है जब महाराज बिन्दुसार के देहान्त के पश्चात् कुमार अशोक राजसिंहासन पर बैठे थे और गृह-कलह का आरम्भ हो गया था।

(किसी के चलने की आहट सुनाई देती है)

राधागुप्त—(आहट पाकर) कौन? देवदत्त?

[देवदत्त का प्रवेश]

देवदत्त—प्रभु! क्या आज्ञा है?

राधागुप्त—क्या समाचार लाये?

देवदत्त—आपकी आज्ञा से मैं महाराज के सिरहाने के पीछेवाले कमरे में छिपा हुआ था। जब महारानी तिष्यरक्षिता वहाँ आईं तो कमरे में सन्नाटा छा गया। सब लोग बाहर चले गये। महारानी ने महाराज को गत रात्रि का अपना एक स्वप्न सुनाया ;

राधागुप्त—स्वप्न में क्या देखा था ? भगवान् कुशल करें।

देवदत्त—किसी महापुरुष ने स्वप्न में प्रकट होकर महारानी से कहा कि चिकित्सा का भार तुम अपने ऊपर ले लो, महाराज का कल्याण होगा।

राधागुप्त—(हँसकर) अब महारानी चिकित्सा करेंगी ! महारानी जो करें सो थोड़ा है। अस्तु। "महाराज का कल्याण होगा" यह वाक्य आशाजनक है। परन्तु क्या मालूम, इसमें तिष्यरक्षिता का कोई षड्यन्त्र हो।

देवदत्त—प्रभु ! इसमें षड्यन्त्र क्या होगा ?

राधागुप्त—देवदत्त ! तुम गुप्तचर हो। क्या तुम्हें इसमें कुछ सन्देह नहीं होता ?

देवदत्त—मैं तो सन्देह नहीं करता। आप बतायें।

राधागुप्त—(धीरे से) महाराज पर इस प्रकार अधिकार जमाकर वह शासन-विधान में अपना प्रभुत्व स्थापित करना और कुमार कुणाल पर अत्याचार करना चाहती है।

देवदत्त—(विस्मित होकर) यदि महारानी का यह आशय हो तो महा अनर्थ हो जायगा।

राधागुप्त—हाँ, तब महाराज ने क्या कहा ? वे मान गये ?

देवदत्त—महाराज ने पहले नीरोग होने का उपाय पूछा। महारानी ने कहा कि उस महापुरुष ने उपाय गुप्त रखने को कहा है। उसका आदेश है कि रहस्य प्रकट कर देने से औषध का महत्त्व जाता रहेगा। महापुरुष के प्रति श्रद्धा के कारण महाराज ने स्वीकृति दे दी।

राधागुप्त—महाराज ने और कुछ नहीं कहा?

देवदत्त—महाराज ने कुमार कुणाल को शीघ्र बुला लेने की इच्छा प्रकट की; किन्तु महारानी ने कहा कि आप धैर्य रखें। दो-तीन दिन में आप स्वस्थ हो जायँगे। तब तक कुमार आ भी नहीं सकेंगे, और जब तक उन्हें सूचना मिलेगी, आप नीरोग हो जायँगे। उन्हें विद्रोही प्रदेश से बुला लेना उचित नहीं।

राधागुप्त—तिष्यरक्षिता! धन्य तेरा बुद्धि-कौशल! महाराज तो पूर्णतया इसके वश में हैं। यह जो चाहे करवा ले। मुझे तो महाराज अशोक का मोह बाँध रहा है; अन्यथा मैं किसी गिरि-कन्दरा में बैठा भगवद्भजन में मग्न होता। क्या करूँ? महाराज के वचन की अवहेलना नहीं की जाती। अच्छा, देखता हूँ, तिष्यरक्षिता क्या रङ्ग लाती है। हाँ, देवदत्त! जब तक सम्राट् की दशा चिन्ताजनक है, तुम इसी कार्य में लगे रहो। समय-समय पर वहाँ जाकर सम्राट् की टोह लेते रहो।

देवदत्त—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

—

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—महारानी तिष्यरक्षिता का भवन

समय—प्रातःकाल

[तिष्यरक्षिता चिन्तित अवस्था में बैठी दिखाई देती है]

तिष्यरक्षिता—भगवन् ! क्या मेरी आशा पूर्ण न होगी, क्या आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान न देंगे ? नहीं, नहीं, आप अवश्य मेरे ऊपर कृपा करेंगे। आपने आज रात के पिछले पहर मुझे वचन दिया है कि आज मेरे पास एक ऐसा रोगी यहाँ आयेगा ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपका वचन शीघ्र फल लायेगा। आप सर्वशक्तिमान् हैं, आप सबल हैं, मुझ निर्बल अबला पर अनुग्रह करें।

[सावेग प्रवेश करके]

आनन्दी—(सहर्ष) हो गया, महारानी ! आपका मनोरथ पूर्ण हो गया ! बाहर वैद्यराज पधारे हैं। साथ में एक रोगी लाये हैं।

तिष्यरक्षिता—(प्रसन्न होकर) नमो बुद्धाय ! नमो बुद्धाय !! भगवान् का वचन पूरा हो गया। वैद्यराज को यहाँ शीघ्र ले आओ।

आनन्दी—जो आज्ञा।

[प्रस्थान और वैद्यराज के साथ प्रवेश]

वैद्यराज—(पास आकर) महारानी ! प्रणाम।

तिष्यरक्षिता—वैद्यराज ! मैं आपका हार्दिक स्वागत करती हूँ। कहिए, रोगी कैसा है।

वैद्यराज—महारानी ! जैसा रोगी आप चाहती थीं, वैसा ही अकस्मात् मिल गया। सो मैं उसे यहाँ ले आया हूँ।

तिष्यरक्षिता—बहुत ठीक। अब रोगी की चिकित्सा करनी होगी। मेरा विचार है कि शल्य-चिकित्सा का प्रयोग किया जाय और तब औषध की जाँच की जाय।

वैद्यराज—हाँ, रोगी के सम्मोहन-चूर्ण खिलाकर शल्य-चिकित्सा हो सकती है। इससे उसका सारा शरीर स्वप्नावस्था में हो जायगा। उपाय तो अच्छा है, परन्तु एक कठिनाई है। रोगी के प्राण महान् सङ्कट में होंगे। इसी कारण हमने इस उपाय का प्रयोग अभी महाराज पर करना नहीं चाहा था।

तिष्यरक्षिता—वाह वैद्यराज ! रोगी क्या इस समय महान् सङ्कट में नहीं है ! राजा-महाराजाओं के मान के लिए, आन के लिए, सैकड़ों-सहस्रों योद्धा मर मिटते हैं, रक्त की नदियाँ वह निकलती हैं, नगर ग्राम क्या समस्त देश उजड़ जाता है। यहाँ सम्राट् पर ऐसा सङ्कट है; क्या एक मनुष्य भी अपने प्राण पर खेलने के उद्यत नहीं ? ऐसे मनुष्य का अधिक काल तक जीवित रहना असम्भव है। तो फिर ऐसे शरीर से परोपकार सञ्चय क्यों न किया जाय ?

वैद्यराज—मैं आपसे सहमत हूँ। मेरे विचार में रोगी से शल्य-चिकित्सा के विषय में अनुमति ले ली जाय। मुझे

आशा है कि उसं कुछ विरोध न होगा। रोगी को बुला लिया जाय।

[तिष्यरक्षिता के आदेशानुसार आनन्दी
रोगी को लेकर भीतर आती है]

रोगी—(आश्चर्य से मन में) धन्य मेरे भाग्य जो आज मैं राज-भवन में आया। कितना विशाल प्रासाद है! (पास पहुँचकर) महारानी के चरणों में चन्द्रदत्त का प्रणाम पहुँचे।

तिष्यरक्षिता—चन्द्रदत्त! चिरञ्जीव रहो। कहो, यह रोग कितने दिनों से है।

चन्द्रदत्त—देवी! यह रोग है तो थोड़े ही दिनों से, परन्तु बड़ा भयङ्कर है। मैं निराश होकर इन वैद्यजी की शरण में पहुँचा था। इन्होंने मुझसे कहा कि महारानीजी इस रोग की औषध देंगी। अतएव मैं आपकी शरण में आया हूँ। यदि इस रोग से छूट जाऊँ, तो मैं सब कष्ट भूल जाऊँगा; वरञ्च यह एक लाभ स्मरण रहेगा कि इस रोग के कारण महारानी और उनके राजभवन देखने का अवसर मिला।

तिष्यरक्षिता—चन्द्रदत्त! इस रोग की चिकित्सा के लिए शल्य-चिकित्सा का प्रयोग होगा। शल्य-चिकित्सा द्वारा तुम्हारे पेट का विकार जाँचकर औषध दी जायगी। क्या सम्मति है?

चन्द्रदत्त—देवी! मैं तो आपकी शरण में आ गया हूँ। मृत्यु वैसे भी सिर पर नृत्य कर रही है, यदि शल्य-चिकित्सा से जीवन बच सकने की आशा हो तो मुझे इसमें कुछ विरोध नहीं।

अपनी ओर से मैं जीवनलीला समाप्त समझता हूँ। यदि आपकी बुद्धि के चमत्कार से मेरा जीवन बच सकता है, तो मुझे इसमें कुछ बाधा नहीं।

तिष्यरक्षिता—अब तुम्हें किसी से मिलने की अभिलाषा है?

चन्द्रदत्त—नहीं, देवी! अब मेरा कोई नहीं। स्त्री थी, वह मर गई। सन्तान हुई नहीं। अब मेरा कोई नहीं जिससे मुझे मिलने की लालसा हो। वैसे तो मृत्यु से मुझे भय नहीं है, परन्तु इस विकट रोग द्वारा मरने की चिन्ता अवश्य है। इच्छा होती है कि कुछ पुण्य एकत्र कर लूँ। शान्ति से प्राण त्याग कर शान्त हो जाऊँ।

तिष्यरक्षिता—तुम्हारा व्यवसाय क्या है? घर कहाँ है?

चन्द्रदत्त—देवी! मैं अहीर का काम करता हूँ। नगर के उत्तरी द्वार के पास मेरी कुटिया है। परन्तु इससे क्या? मैं अब वहाँ नहीं जाऊँगा। यदि भगवान् ने आयु और दी, तो भिक्षु बनकर भगवद्भक्ति में रत रहूँगा।

तिष्यरक्षिता—वैद्यराज! अब विलम्ब मत कीजिए। आइए, आप शल्य-चिकित्सा का सब प्रबन्ध देख लीजिए। चन्द्रदत्त, तनिक प्रतीक्षा करो। अभी आती हूँ।

वैद्यराज—बहुत अच्छा। नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय। (दोनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

—— ——

छठा दृश्य

स्थान—तिष्यरक्षिता का विश्राम-गृह

[तिष्यरक्षिता प्रसन्न-वदन बैठी है]

तिष्यरक्षिता—आज मेरी बुद्धि की महत्ता सब मान जायँगे। चन्द्रदत्त यहाँ शल्य-चिकित्सा द्वारा स्वस्थ हो गया। रोग का मूल नष्ट हो गया। केवल पट्टी का कष्ट रह गया। वह भी समय पाकर ठीक हो जायगा। वैद्यराज मेरे उपाय से विस्मित होकर मेरी भूरि भूरि प्रशंसा कर रहे थे। अहहह ! पहले मैं रानियों में श्रेष्ठ थी, अब वैद्यों में अग्रणी कहलाऊँगी। संसार को विदित हो जायगा कि एक स्त्री अपनी बुद्धि द्वारा क्या कर सकती है। अब मैं वह आदर पाऊँगी जो किसी महारानी ने न पाया होगा। आज मेरे सौभाग्य का सूर्य फिर उदय हो गया।

[प्रवेश के अनन्तर]

आनन्दी—महारानीजी, बलिहारी है आपकी बुद्धि की ! अब तो सुख ही सुख है।

तिष्यरक्षिता—वाह आनन्दी, आज हमारे सुख की क्या सीमा ! हम दो अबलाओं की बुद्धि ने वह काम कर डाला जिसे करने में सब 'सबल' निराश हो चुके थे। आज महाराज बिल्कुल स्वस्थ हो जायँगे।

आनन्दी—हाँ, महारानीजी ! वही औषध अब अपना प्रभाव महाराज पर दिखावेगी। वाह री औषध ! महानौषध ! किसको मालूम था कि इस तुच्छ और घृणा के पात्र प्याज में यह गुण है !

तिष्यरक्षिता—देख, आनन्दी ! आश्चर्य तो यही है कि जहाँ मिर्च, पिप्पली, शृङ्गवेर आदि वस्तुओं के द्वारा रोग के कृमियों का नाश न हुआ, वहाँ प्याज से उनका समूल नाश हो गया। प्याज के रस से सब कृमि नष्ट होकर विष्ठामार्ग से निकल गये। ये कृमि जब ऊपर जाते थे, तब इनके साथ विष्ठा ऊपर जाने लगती थी; जब ये नीचे जाते थे, तब विष्ठा नीचे जाने लगती थी। यही रोग का कारण था। अब यह औषध महाराज पर अपना अद्भुत प्रभाव दिखायेगी।

आनन्दी—और वही फल लायेगी। महाराज को स्वस्थ कर दिखायेगी। संसार में तुम्हारे नाम का डङ्का बजा लायेगी।

तिष्यरक्षिता—अभी तो आधा काम हुआ है। पूरा काम तब होगा जब मेरी आँखों से कुणाल-रूपी काँटा दूर हो जायगा।

आनन्दी—आपकी आँखों से तो वह पहले से ही दूर है।

तिष्यरक्षिता—हाँ-हाँ, यह समझ ले कि अब कुणाल पद-दलित होकर मिट्टी में मिल जायगा।

आनन्दी—ठीक है। आपकी इच्छा का विरोध करनेवाले का यही परिणाम है।

तिष्यरक्षिता—हाँ, अब महाराज से इस औषध का वर्णन कर दूँ। इसके अनन्तर इस औषध का विशेष रूप से प्रयोग कर दूँ।

आनन्दी—बड़े आश्चर्य की बात है कि अब तक किसी वैद्य को यह औषध नहीं सूझी।

तिष्यरक्षिता—एक वैद्य ने प्याज खाने के लिए कहा तो था किन्तु महाराज ने ऐसे निकृष्ट पदार्थ को खाने से इनकार किया। किसी को क्या मालूम था कि इसमें इतने गुण भरे हैं!

आनन्दी—महारानी! वास्तव में जब भगवान् की कृपा होती है, तब वह किसी न किसी बहाने मनोरथ को सुफल करता है।

तिष्यरक्षिता—हाँ, ठीक है। अब जाती हूँ।

आनन्दी—मैं भी अपने कार्य पर जाती हूँ। (दोनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्त्तन

सातवाँ दृश्य

स्थान—अशोकाराम विहार

[आनन्दगुप्त का प्रवेश]

आनन्दगुप्त—नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय। भगवान् की महिमा अपरम्पार है। चाहे रङ्क को राजा कर दे, राजा को रङ्क; मृत को जीवित कर दे, जीवित को मृत। नमो बुद्धाय। पुण्यप्रताप के सामने भगवान् दयालु हो जाते हैं; अपने भक्तों को दुःख से उबार लेते हैं; शरणागत की रक्षा करते हैं। अद्भुत है भगवान् की माया! महाराज मृत्यु-द्वार से बाहर निकल आये। कल तक निराशा झलक रही थी, आज आशा दीख पड़ती है। कल प्रत्येक हृदय महाराज की वेदना पर दुःखित था, आज उनके स्वस्थ हो जाने का समाचार पाकर पुलकित है। कल प्रजा में शोक-भाव का सञ्चार था, आज हर्ष और उल्लास है।

(दूर से कोलाहल सुनाई देता है)

आनन्दगुप्त—(उधर देखकर) अरे! वह दूर से कूदता-फाँदता मृग-गति से कौन आ रहा है! (ध्यान से देखकर और शब्द सुनकर) यह तो कोई राजादेश सुनाता दिखता है। इस समय राजादेश क्या होगा? चलें, सुनें। (आगे बढ़ता है)

[राजपुरुष का प्रवेश]

राजपुरुष—अररररर पाटलिपुत्र-निवासियो ! आप सबको यह समाचार सुनकर हर्ष होगा कि देवानांप्रिय प्रियदर्शी चक्रवर्त्ती सम्राट् श्री अशोक सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता को चिकित्सा द्वारा स्वस्थ हो गये। सम्राट् ने सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता पर प्रसन्न होकर उनको सात दिन तक राज्य करने का अधिकार दिया है। अब से लेकर एक सप्ताह तक सम्राज्ञी श्रीमती तिष्य-रक्षितादेवी राज्य करेंगी। (ढोल बजाता हुआ दूसरी ओर चला जाता है)

(लोग इधर-उधर जाने लगते हैं। भवगुप्त और बुद्धगुप्त आनन्दगुप्त को देखकर पास खड़े हो जाते हैं)

भवगुप्त—भगवान् ने महाराज पर कृपा दिखाई है। तिष्यरक्षिता को यश की उज्ज्वल चादर ओढ़ाई है। महाराज के स्वस्थ होने से सब प्रसन्न हैं। तिष्यरक्षिता की प्रसन्नता क्या इसमें न थी जो सात दिन के राज्य की इच्छा उठी ? देखें, यह सप्ताह कैसे व्यतीत होता है ! क्या-क्या घटनाएँ सामने आती हैं !

आनन्दगुप्त—भव ! तुम व्यर्थ दोपारोप करते हो। यह तो मैं आप अपने कानों से सुन आया हूँ कि महाराज ने स्वयं तिष्यरक्षिता को वर प्रदान किया।

भवगुप्त—वर देने का तात्पर्य राज्य-प्रदान नहीं हो सकता। यह छल है।

बुद्धगुप्त—महाराज ने तुरन्त स्वीकृति दे दी होगी।

आनन्दगुप्त—नहीं, महाराज ने पूछा "तब तक मैं क्या करूँगा ?" तब रानी तिष्यरक्षिता ने कहा—"एक सप्ताह के पश्चात् आप पुनः राजा होंगे। मुझे यह जानने का कुतूहल है कि राज्य कैसे किया जाता है, राजा का क्या कर्त्तव्य होता है, इसी लिए मैंने यह वर माँगा है।" यह उत्तर सुनकर सम्राट् ने सम्राज्ञी की बात स्वीकार कर ली।

भवगुप्त—देखें, यह सात दिन का राज्य भी यश का भागी होता है, या अपयश का। तिष्यरक्षिता की यह लालसा उचित न थी।

बुद्धगुप्त—क्यों ? इसमें कौन सा दोष देखते हो ?

आनन्दगुप्त—दोष कुछ नहीं। तिष्यरक्षिता पहले निस्सन्देह दुष्ट थी; परन्तु अब उसका आचार-व्यवहार पहले जैसा नहीं रहेगा। चोट खाकर बुद्धि ठिकाने आ जाती है।

भवगुप्त—मुझे तो तिष्यरक्षिता पर विश्वास नहीं होता। प्रकृति बलवान् है। ऐसी लालसा की सीमा क्या ? यदि यह लालसा बढ़ जाय, तो अन्धेर हो जायगा।

बुद्धगुप्त—अन्धेर क्या ? तुम तो पहेली की सी बातें करते हो।

भवगुप्त—भाई ! मेरा तात्पर्य यह है कि कभी समय आने पर फिर भविष्य में भी तिष्यरक्षिता को राज्य करने की धुन सवार न हो जाय। युवराज तो कुमार कुणाल हैं ! तब फिर वही परिस्थिति न उपस्थित हो जाय जो महाराज अशोक के राज-सिंहासन पर बैठने के समय हुई थी।

आनन्दगुप्त—हाँ, तुम्हारी यह आशङ्का उचित है। परन्तु मैं एक बात का स्मरण करा देना चाहता हूँ। तिष्यरक्षिता के सन्तान नहीं है। वह अब व्यर्थ कलह न करेगी।

बुद्धगुप्त—यदि कलह हुआ तो ऐसी स्थिति नहीं होगी जिसकी तुम सम्भावना करते हो। सम्राट् के साथ ही तिष्यरक्षिता की शक्ति है। सम्राट् के बिना वह कुछ नहीं कर सकेगी। प्रजा उसके पूर्वपद और आधुनिक दुश्चरित्र से पूर्णतया परिचित है। प्रजा धर्मविवर्धन कुणाल का साथ देगी। तक्षशिला प्रान्त के वीर योद्धाओं का सामना करना सहज न होगा।......

भवगुप्त—हुई न वही बात! जब तुम स्वयं सेना के वीर योद्धाओं की कल्पना करने लगे हो, तो मेरी बात क्यों काटते हो? सेना आदि का सामना करने में क्या देश-हानि, जीव-हानि, धन-हानि न होगी?......

बुद्धगुप्त—मेरी बात तो तुमने अधूरी ही सुनी थी। मैं आगे यह कहने को था कि युवराज की सेना आदि के भय तथा अन्य कारणों से तिष्यरक्षिता राज्य के लिए हाथ न उठायेगी।

भवगुप्त—अच्छा, भाई! झगड़ा करने से क्या लाभ? भविष्य इस बात को दिखला देगा कि कौन सच्चा है। मैं अब जाता हूँ। (प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

—

आठवाँ दृश्य

स्थान—तिष्यरक्षिता का सज्जित गृह

समय—रात्रिकाल

[तिष्यरक्षिता के पास लेख-सामग्री रखी है; पत्र हाथ में है]

तिष्यरक्षिता—कुणाल ! अधम कुणाल ! ! तुम्हारा जीवन मेरे हाथ में है। पद्मावती जन्म देने के कारण तुम्हारे लिए अधिक आदरणीय है। ठीक है न ? अब देखूँगी पद्मावती कैसे तुम्हारी रक्षा करती है। पद्मावती की पाषाणमूर्त्ति का भी अधिक आदर हो, यह मैं सह नहीं सकती। तुम मुझसे घृणा करते हो ! तुम हो मेरे हृदय के काँटे, पेट के शूल। जब सौत का पुत्र राजसिंहासन का अधिकारी हो जाय, तो और भी अनर्थ ! कुणाल ! तुमने कुणाल पक्षी के नेत्र-सदृश अपने सुन्दर नेत्रों द्वारा महाराज को वश में कर रखा है। इसलिए तुम्हारे वही सुन्दर नेत्र मैं नष्ट करती हूँ। नेत्रों सहित तुम्हारा मुख देखकर दर्शक मुग्ध हो जाते हैं। तुम्हारा नेत्र-विहीन मुख कैसा होगा, कैसा होगा (सोचकर) मैं देख-कर प्रसन्न होऊँगी, और दूसरे लोग देखकर मुख मोड़ लेंगे। नगर से निर्वासित होकर तू किसी हिंस्र पशु का ग्रास बन जायगा। मैं सम्राज्ञी राज्याधिकारिणी ...हाँ, अब बदला ले लूँगी। (उत्सुक नेत्रों से पत्र देखने लगती है) कुणाल

तो इस समय तक्षशिला में है। महाराज को कुछ सूचना नहीं मिल सकती कि मैंने वहाँ क्या राजाज्ञा भेजी है। जब सूचना मिलेगी, तब रो-धोकर शान्त हो जायेंगे। मेरे ऊपर क्रोध करेंगे; मैं शान्त कर लूँगी। अब इस पत्र पर राज-चिह्न लगाकर चलता करती हूँ। (राजमुद्रा उठाकर कुछ सोचने लगती है) यदि महाराज की दन्तमुद्रा इस पत्र पर लगा दूँ तो आज्ञा-पालन में तनिक भी विलम्ब न होगा, किसी को इसमें कोई सन्देह न होगा। दन्तमुद्रित पत्र पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता। इस समय महाराज सोते होंगे, दन्तमुद्रा लगा लेना सहज होगा। जाती हूँ।

(पत्र लेकर छिपा लेती है, और महाराज के शयनगृह में पहुँचती है। महाराज निद्रावस्था में डरकर जाग पड़ते हैं)

अशोक—(सावेग) प्रिय पुत्र कुणाल ? कौन है तू...

तिष्यरक्षिता—(भयभीत होकर) महाराज! आप डर गये ? क्या हुआ ?

अशोक—तिष्ये ! एक दुःस्वप्न देखा है।

तिष्यरक्षिता—(चौंककर) क्या देखा ?

अशोक—(सभय) मैंने देखा कि दो गिद्ध कुमार कुणाल के नेत्र निकालना चाहते हैं। इस स्वप्न से मैं काँप उठा और जाग गया।

तिष्यरक्षिता—कुणाल तो सकुशल है। आप स्वप्न की कुछ चिन्ता न करें। कुमार की परछाईं को भी छू लेना कठिन है, उसके नेत्रों का क्या कहना ?

(कुछ समय में महाराज फिर सो जाते हैं और पुनः भयभीत होकर जाग उठते हैं)

अशोक—तिष्ये ! मैंने स्वप्न अच्छा नहीं देखा।

तिष्यरक्षिता—कैसे ?

अशोक—मैंने देखा है कि कुमार, मेरा प्रिय कुणाल, इस नगर में आया है। बाल और नाख़ून बड़े-बड़े हो रहे हैं। रूप कुरूप हो रहा है। मुख-कान्ति फीकी पड़ गई। हाय ! नमो बुद्धाय।

तिष्यरक्षिता—(चिन्तित होकर) महाराज ! कुछ चिन्ता न करें। कुमार स्वस्थ हैं। विद्रोह शान्त कर शीघ्र सकुशल लौट आयेंगे। शान्त हूजिए, भय छोड़िए।

(कुछ समय के अनन्तर महाराज सो जाते हैं। तिष्यरक्षिता अवसर पाकर दन्तमुद्रा लगाकर चली जाती है)

तिष्यरक्षिता—(सोचकर) पत्र किसी ऐसे पुरुष के हाथ भेजना चाहिए जिससे यह रहस्य यहाँ खुलने न पावे; नहीं तो महाराज के कान में यह रहस्य पहुँचते ही खेल बिगड़ जायगा। अच्छा, आनन्दा से मन्त्रणा करती हूँ। वह ऐसा कोई पुरुष बता सकेगी।

(प्रस्थान)

[पट परिवर्तन

नवाँ दृश्य

स्थान—तक्षशिला में उपराज कुणाल के राजभवन का उद्यान

समय—प्रातःकाल

[मधुर वायु चल रही है। पक्षी भिन्न-भिन्न बोलियाँ बोल रहे हैं। किसी का गाना सुन पड़ता है]

बरसे रस, अलि ! अमन्द।
होते दुख-द्वार बन्द॥ बरसे रस०॥
धार-धार सुमनहार
मोहे मन डार-डार;

[काञ्चनमाला का दो सखियों सहित प्रवेश। सखियाँ गा रही हैं]

विकसे अरविन्द-वृन्द
गूँजें पी मधु मिलिन्द॥ बरसे रस०॥
उड़ता चहुँ दिशि पराग,
गाते द्विज मधुर राग;
गन्धवाह अति सुगन्ध,
हरता चित चारु चन्द॥ बरसे रस०॥

पहली सखी—अहह ! प्रातःकाल की वायु कितनी सुहावनी है। पशु-पक्षी आनन्द में मग्न हैं। पक्षियों का कलरव कितना हृदय-ग्राही है।

दूसरी सखी—(पुष्प तोड़कर) सखी! देखो, कैसी सुन्दर सुगन्ध है।

पहली सखी—कमला ! सुगन्ध क्या दिखाती हो ? कुछ पुष्प लेकर रानीजी का शृङ्गार न कर दो।

कमला—हाँ, विमला, ठहरो। मैं पुष्प एकत्र कर लूँ।

(पुष्प एकत्र करती है)

काञ्चनमाला—कमला ! मुझे आज शृङ्गार नहीं सोहाता। पुष्प मत लाओ।

कमला—(हँसकर) यह समय मनोविनोद का है। आप उदासीन क्यों हैं ?

विमला—रानीजी ! आज चिन्ता कैसी ? जरा इधर-उधर दृष्टि दौड़ाओ। देखो, आँखें कैसी तृप्त होती हैं !

काञ्चनमाला—सखियो ! क्या देखूँ ? मन तो व्याकुल है। कह नहीं सकती, क्या कारण है।

कमला—(मुसकराकर) क्या कुछ गूढ़ कारण है ?

काञ्चनमाला—मैं स्वयं नहीं जानती।

विमला—मैं जानती हूँ।

दोनों—क्या ?

विमला—सूर्योदय होने को है। पूर्व दिशा में लालिमा फैल रही है।

कमला—इससे क्या सम्बन्ध ?

विमला—इन्हें भय है कि मेरी मुख-लालिमा कम न हो जाय।

(कमला हँसती है)

काञ्चनमाला—विमला ! तू बड़ी बातून हो गई है।

कमला—सखी ! क्या विमला ठीक कहती है ?

काञ्चनमाला—विमला कहती है कि सूर्योदय के समय कमल खिल जाते हैं। सो कमला इस समय ख़ूब खिल रही है।

(तीनों हँसती हैं)

विमला—(हँसती हुई कमला का गाल छूकर) देखूँ, कमल कितना खिला है ?

कमला—विमला ! तू बहुत चञ्चल हो गई है।

(इतना कहकर विमला के गाल पर धीमे से चपत लगाती है)

विमला—(मुँह बनाकर) मैं आज उपराजजी से तुम्हारी शिकायत करूँगी और न्याय माँगूँगी। वे बड़े न्यायप्रिय हैं। मैं तुझे दण्ड दिलाऊँगी। (रूठकर मुँह मोड़ लेती है)

काञ्चनमाला—(मुसकराकर) बताओ, क्या दण्ड दिलाओगी।

विमला—कमला का ब्याह करवा दूँगी।

(सब हँसती हैं। काञ्चनमाला की दाईं आँख फड़कती है और उसका हृदय चिन्तित हो जाता है)

विमला—रानीजी ! चिन्तित क्यों हो गईं ?

काञ्चनमाला—मन तो प्रातःकाल से ही न जाने क्यों कुछ भयभीत था। फिर भी तुम्हारे साथ मनोविनोद को आ गई थी। अब दाईं आँख बार-बार फड़क रही है। इससे अनिष्ट की आशङ्का होती है।

कमला—भगवान् कुशल करें। आपका अनिष्ट कौन कर सकता है? जो आपका अनिष्ट करना चाहेगा, उलटा उसी का अनिष्ट होगा। आप चिन्ता न करें।

विमला—हाँ, ठीक है। आपका अनिष्ट होना असम्भव है। आओ, पुष्प-वाटिका में चलें।

(काञ्चनमाला की दाईं आँख फिर फड़कती है)

काञ्चनमाला—यह देखो, फिर आँख फड़की। हाय! आज क्या होनेवाला है। भगवान् कुशल करे। मैं लौटती हूँ।

कमला और विमला—अच्छा, चलो। भगवान् से अनिष्ट-निवारण के लिए प्रार्थना करें। (सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

दसवाँ दृश्य

स्थान—तक्षशिला में परिषद्-गृह

[अमात्यजन आदि उपराज कुणाल की प्रतीक्षा कर रहे हैं।
प्रधान अमात्य के सामने कई पत्र रखे हैं]

प्रधान अमात्य—मन्त्रीजी ! उपराजजी के विचार योग्य कोई और पत्र तो नहीं है ?

मन्त्री—नहीं, अमात्यवर !

प्रधान अमात्य—(सब पत्र क्रमपूर्वक रखकर) उपराजजी को बहुत विलम्ब हो गया।

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल—(शिष्टाचार के पश्चात्) प्रधानजी ! पाटलिपुत्र से एक राजसन्देशवाहक आया है। आपके दर्शन करना चाहता है।

प्रधान अमात्य—ले आओ।

[द्वारपाल का प्रस्थान और राजसन्देशवाहक के साथ प्रवेश]

राजसन्देशवाहक—(उचित शिष्टाचार के पश्चात्) अमात्यश्रेष्ठ ! सम्राट्‌देव का यह एक आवश्यक सन्देश है। (पत्र देता है) उत्तर लाने के लिए आज्ञा की है।

प्रधान अमात्य—(पत्र लेकर पढ़ता है) ओह ! यह क्या वज्र... (अचेत होकर गिर पड़ता है)

(सेनापति पत्र लेकर पढ़ता है। प्रधान अमात्य
उपचार द्वारा सचेत हो जाता है)

सेनापति—आश्चर्य है ! शान्त-चित्त, दयानिधि तथा लोक-हितैषी सम्राट् का कुमार से द्वेष है, तो वे और किसी पर स्नेह-भाव क्या रखेंगे ?

[उपराज कुणाल का प्रवेश। यथोचित शिष्टाचार के अनन्तर सब, शोकाकुल होने से, बोलने में असमर्थ हो जाते हैं]

कुणाल—(यह दशा देखकर) प्रधान अमात्य! यह शोक क्यों ? (इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर सेनापति के हाथ में राज-मुद्रित पत्र देखते हैं) क्या पाटलिपुत्र से कुछ अमङ्गल-सूचक समाचार आया है?

(सेनापति पत्र देता है)

कुणाल—(पत्र पढ़कर हर्ष और विस्मय से) सज्जनो ! आप देवानां-प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् अशोक का सन्देश सुनने के लिए उत्कण्ठित हो रहे होंगे। अतएव मैं स्वयं ही यह मङ्गल-सूचक पत्र सुनाता हूँ :—

"देवानांप्रिय प्रियदर्शी सम्राट् अशोक की ओर से प्रधान अमात्य को यह आवश्यक आदेश दिया जाता है कि उपराज कुणाल के दोनों नेत्र निकालकर उसे नगर से तत्काल निर्वासित कर दिया जाय। कुणाल कुल-कलङ्क है। उसने पिता से विद्रोह करके साम्राज्य को हस्तगत करने का षड्यन्त्र रचा है। अतएव न्यायप्रिय सम्राट् यह आज्ञा देते हैं कि पत्र पढ़ते ही उसे, विना विलम्ब के, निर्दिष्ट दण्ड दे दिया जाय।"

सभाजन—(पत्र सुनकर) उपराज सर्वथा निरपराध हैं।

प्रधान अमात्य—सम्राट्देव को भ्रम हुआ है।

कुणाल—सज्जनो ! सम्राट् दूरदर्शी हैं। वे भ्रम में नहीं पड़ सकते। उनकी आज्ञा पर आलोचना करना अनुचित है।

प्रधान अमात्य—उपराज, कुमार ! यह पत्र सम्राट्देव का नहीं हो सकता। सम्राट् कोमल-हृदय हैं, पाषाण-हृदय नहीं। मुझे इस पत्र में कपट की झलक दिखाई देती है।

कुणाल—(साश्चर्य) अमात्यवर ! राजनीतिज्ञ प्रत्येक पद पर सन्देह करते हैं। इस पत्र में कपट कौन सा है ?

प्रधान अमात्य—उपराज ! पत्र को ध्यान से देखिए। उस पर तिथि नहीं है। सम्राट्देव के हस्ताक्षर भी नहीं हैं।

कुणाल—अमात्यश्रेष्ठ ! आप पत्र पर दन्तमुद्रा को देखिए। दन्तमुद्रा पिताजी के अतिरिक्त किसी और की हो नहीं सकती। यह कृत्रिम नहीं है।

प्रधान अमात्य—उपराज ! अभी ठहर जाइए। सम्राट् से इस विषय में पूछ लेते हैं। सन्देह मिट जायगा।

सेनापति—हाँ, ठीक है। कुमार ! शीघ्रता करना ठीक नहीं।

कुणाल—प्रधान अमात्य ! आप व्यर्थ विलम्ब कर रहे हैं। यह पुत्र का सौभाग्य है कि वह पिता के लिए अपने प्राण अर्पण कर सके। (सेनापति की ओर देखकर) मुझे तो केवल नेत्रों द्वारा सेवा करनी है; इसमें विचार कैसा ? जल्दी कीजिए, चाण्डाल को बुलवाइए।

सेनापति—उपराज ! आज आपको कैसा मोह हो गया ? पत्र के छल-कपट पर आप सन्देह नहीं करते, वरञ्च इसको सत्य मानने

में दृढ़ विश्वास करते हैं। पितृ-भक्ति में दृढ़-अनुरक्त होकर अपने नेत्र गँवाते हैं, यद्यपि पिता इस पत्र से अनभिज्ञ ही क्यों न हों। सम्राट् को एक पक्षी की हिंसा भी असह्य है। इसके लिए वे दोषी को दण्ड देते हैं। फिर क्या वे अपने पुत्र को, उपराज को, युवराज कुमार को, नेत्र-हीन करके लोक-काज में असमर्थ करने की आज्ञा दे सकते हैं? नहीं, कभी नहीं। आप पर आरोपित अभियोग भी असत्य है और यह दण्ड भी सम्राट्देव की प्रकृति के विरुद्ध है। मेरी सम्मति में तो यही उत्तम है कि आप इस पत्र की जाँच हो जाने तक प्रतीक्षा करें।

कुणाल—मैं समझता हूँ कि प्रतीक्षा करना राजाज्ञा का स्खलन करना, पितृ-आज्ञा की अवहेलना करना, पुत्र-कर्त्तव्य से मुँह मोड़ना है। सेनापतिजी! एक भिखारी जब भगवान् के नाम पर कोई वस्तु माँगता है, तो दयालु लोग उसे वह वस्तु दे देते हैं। मैं भगवद्भक्त हूँ और पितृ-भक्त भी। जब पिताजी के नाम पर कोई मेरे नेत्र लेना चाहता है, तो मुझे इसमें कुछ आपत्ति नहीं। सज्जनो! मैं फिर कहता हूँ कि पत्र पर आप सम्राट् की दन्तमुद्रा को देखिए। दन्तमुद्रा का महत्त्व आपसे छिपा नहीं है। आप जानते हैं कि यह दन्तमुद्रा इस पत्र के सत्य होने का प्रमाण है। अब विलम्ब मत कीजिए। (चाण्डाल को बुलाने की आज्ञा देते हैं)

सेनापति—उपराज! आप कैसी कायरता दिखा रहे हैं? अपने विमल यश पर कायरता का कलङ्क लगने देना एक राजकुमार के लिए

शोभा को बात नहीं। आपने कोई अपराध नहीं किया जिसका फल यह दण्ड समझकर हम अपने चित्त को सान्त्वना दे सकें। देखिए, उपराज! आवश्यकता पड़ने पर मेरे वीर सैनिक अपने प्राणों पर खेलकर आपकी सेवा करने के लिए उद्यत हैं।

कुणाल—(कुछ क्रोध से) सेनापतिजी ! आप वृद्ध हैं। आपने चिरकाल तक राजसेवा की है। राजद्रोह करना आपके लिए उचित नहीं। मुझे आश्चर्य होता है कि सम्राट् का सेनापति सम्राट् द्वारा निर्धारित विद्रोही के साथ सहानुभूति प्रकट कर रहा है। आप जानते हैं कि पिता का पद कितना महत्त्व रखता है।

सेनापति—उपराज, कुमार! क्रोध मत कीजिए। मेरे वचनों पर शान्तिपूर्वक विचार कीजिए। मेरा अभिप्राय केवल इतना है कि इस आज्ञा की पुष्टि हो जाने तक आप प्रतीक्षा करें।

[चाण्डाल लोहे की गरम सलाइयाँ लेकर प्रवेश करता है। सब ओर सन्नाटा छा जाता है]

अमात्यजन—(व्याकुल होकर) चाण्डाल! ठहर जा। तेरी आवश्यकता नहीं।

कुणाल—चाण्डाल! इधर आ। निर्भय होकर मेरी आज्ञा मान। मेरे दोनों नेत्रों में से तुच्छ कौड़ियाँ निकालकर बाहर फेंक दे।

चाण्डाल—(काँपकर) अरर रे! उपराजजी ने क्या मुझे अपने लिए बुला भेजा है? मैंने तो समझा था कि आज किसी अभागे ने उपराज का कोई घोर अपराध किया है। उपराज पर हाथ उठाऊँ? मुझसे यह कभी न होगा।

कुणाल—तुम राजाज्ञा का उल्लङ्घन करने का परिणाम जानते हो। मेरी आज्ञा मानो और मेरे दोनों नेत्र निकालकर सम्राट्देव की प्रसन्नता प्राप्त करो।

चाण्डाल—(व्याकुलता से) क्या दयालु सम्राट्देव की इसमें प्रसन्नता होगी? नहीं, नहीं। हा भगवन्! मैं यह क्या सुन रहा हूँ! मुझसे राजाज्ञा का पालन न होगा, न होगा। जो दण्ड मिलेगा, सहन कर लूँगा।

कुणाल—चाण्डालराज! राजाज्ञा की अवहेलना करते हो। यह श्रेयस्कर नहीं। आज्ञापालन करो या पद-त्याग।

चाण्डाल—हाँ, मुझे पद-त्याग स्वीकार है। (शस्त्र फेंक देता है) उपराज की जय हो। (नमो बुद्धाय नमो बुद्धाय कहते हुए प्रस्थान)

प्रधान अमात्य—उपराज! मेरा कहा मानो। कुछ समय तक प्रतीक्षा करो। इस पत्र के विषय में सम्राट्देव से जाँच कर ली जाय, कपट अथवा वास्तविकता का निर्णय हो जाय।

सेनापति—हाँ, उपराज! मेरा भी यही अनुरोध है।

कुणाल—(सावेग) आप दोनों मुझे सन्मार्ग से विचलित करते हैं; सत्पथ से कुपथ पर ले जाते हैं। मैं अब किसी की न सुनूँगा।

(शस्त्र लेकर कुणाल अपने नेत्र स्वयं निकाल देते हैं। सब ओर हाहाकार मच जाता है। सभा विसर्जित हो जाती है)

[पट-परिवर्तन

ग्यारहवाँ दृश्य

स्थान—तक्षशिला में काञ्चनमाला का राजभवन

[काञ्चनमाला को ढूँढ़ती हुई कमला का प्रवेश]

कमला—(साश्रुनेत्र होकर) हा सखी काञ्चनमाला! हा सखी! तुम्हें कहाँ ढूँढूँ? मिलूँ तो क्या कहूँ? कैसे कहूँ? हृदय दो टूक हुआ जाता है। ऐसी दुःखद सूचना से मेरी देह तड़प रही है। हाय! हमारे भाग्य ने कैसा पलटा खाया! यह सूचना कैसे दूँगी! अथवा सखी से मिलूँ ही नहीं, जिससे मेरे मुख-द्वारा वे यह बुरी सूचना न सुनें। नहीं, यह ठीक नहीं। उपराज कुणाल शीघ्र ही उन्हें अपने साथ लेकर नगर से बाहर चले जायँगे। अन्तिम दर्शन भी दुर्लभ हो जायँगे। साथ जाने की इच्छा होती है, परन्तु स्वीकृति न मिलेगी। हाँ, सखी को शीघ्र ढूँढूँ। (ढूँढ़ती हुई एक स्थान पर काञ्चनमाला को पा जाती है)

काञ्चनमाला—सखी कमला! यह व्याकुलता कैसी? कहाँ गई थी?

कमला—सखी! आपके दर्शन शीघ्र करना चाहती थी। और······

काञ्चनमाला—दर्शन! नहीं सखी! कहो, कमल-वदन मुरझा क्यों रहा है। मुखकान्ति फीकी क्यों पड़ रही है?

कमला—सखी! कारण महान् है परन्तु कहा नहीं जाता।

काञ्चनमाला—(चिन्ता करके) शीघ्र कहो कमला! जो कहना है शीघ्र कहो। मेरा मन पहले से ही व्याकुल हो रहा है।

कमला—(सशोक) सखी ! आपका सौभाग्य अटल रहे। एक महान् अनिष्ट हुआ है।

काञ्चनमाला—मेरे सौभाग्य का अनिष्ट ! हाय ! प्राणनाथ ! आती हूँ। (मूर्च्छित हो जाती है)

[कमला सचेत करती है। उपराज कुणाल सेवक का आश्रय लिये प्रवेश करते हैं]

काञ्चनमाला—(सचेत होकर) मेरे प्राणाधार सकुशल हैं। (फिर कुणाल को देखकर, आगे बढ़कर चरण-स्पर्श करती है) आप आ गये ? कमला ! यह क्या ?

कुणाल—(हाथ से काञ्चनमाला को उठाकर) प्रिये !...

काञ्चनमाला—(कुणाल की आँखों को देखकर) हाय ! यह क्या हो गया ? आँखों की शोभा फीकी क्यों पड़ गई ? कहो नाथ ! शीघ्र कहो। (रोती है)

कुणाल—काञ्चन ! आँखों में दो कौड़ियाँ फँस रही थीं, उन्हें निकाल डाला है। धीरज धरो। तुम जानती हो कि यह लोक कर्म से बँध रहा है और मनुष्य दुःख सहन करता है।

काञ्चनमाला—हाय ! नाथ ! इन सुनेत्रों का शत्रु कौन बन गया ? आपके लिए किसने जगत अन्धकारमय कर दिया ?

कुणाल—(ढाढ़स देते हुए, अपने हाथों से काञ्चनमाला के आँसू पोंछकर) काञ्चन ! मेरी काञ्चन ! रोती क्यों हो ? नेत्र स्थूल अच्छे हैं या सूक्ष्म ? ये दोनों नेत्र श्रेष्ठ हैं या एक ज्ञान-नेत्र ? पहले मैं इन दिखावटी आँखों से देखता था,

अब ज्ञानमय नेत्र से देखूँगा। जो-जो पदार्थ, जो-जो स्थान, पहले अदृश्य थे, वे अब दृष्टिगोचर होने लगेंगे। इस अवस्था की इच्छा तो बड़े-बड़े योगी-तपस्वी करते हैं। मुझे तो बिना माँगे, बिना कहे, यह अवस्था मिल गई। यह समय प्रसन्नता का है, शोक का नहीं।

काञ्चनमाला—(शोकाकुल होकर) प्रातःकाल से मेरे हृदय को अज्ञात भय घेर रहा था। मैं नहीं जानती थी कि आपका ही अनिष्ट होगा। हाय! इस दुःख का कारण कौन हुआ?

कुणाल—पूज्यपाद पिताजी का सन्देश-वाहक एक आवश्यक पत्र लेकर आया है जिसमें विद्रोही मानकर मुझे अन्धा किये जाने का दण्ड हुआ है। और......

काञ्चनमाला—यही दण्ड मुझे भी होगा।

कुणाल—नहीं, काञ्चन! और मुझे नगर-त्याग का भी आदेश हुआ है।

काञ्चनमाला—(साश्चर्य) हा! पिताजी का यह आदेश! नहीं, कभी नहीं। नाथ! आपको भ्रम हुआ है। यह कपटजाल माता तिष्यरक्षिता का रचा हुआ दिखता है।

कुणाल—सम्भव है। माता तिष्यरक्षिता मेरे ऊपर रुष्ट हैं। यदि वे मेरे नेत्र लेकर प्रसन्न हो जायँ, तो इसमें मुझे कुछ आपत्ति नहीं। यह शरीर नश्वर है। इससे लोकसेवा करना परम उचित है। यदि नाश होने से पहले इस शरीर द्वारा माता-पिता की सेवा हो सके तो और चाहिए क्या।

एक माता ने यह सारा शरीर बनाया, दूसरी ने यदि केवल नेत्र ले लिये तो क्या हानि है? उठो, नगर त्याग करके मुझे वन का आश्रय लेने दो।

काञ्चनमाला—प्राणनाथ! तो मैं क्या करूँ? पिताजी ने मेरे लिए क्या आज्ञा दी है?

कुणाल—तुम्हारे लिए कुछ आज्ञा नहीं। तुम जहाँ इच्छा हो, रहो।

काञ्चनमाला—यह बात असम्भव है। ज्योत्स्ना चन्द्रमा से पृथक् नहीं हो सकती। मैं आपके साथ चलूँगी। आपको मार्ग बताती चलूँगी। हाथ पकड़कर कुमार्ग से रक्षा करती रहूँगी।

कुणाल—तुम्हारी इच्छा।

काञ्चनमाला—प्राणाधार! स्त्री का कर्त्तव्य है कि पति की सेवा करे। पति यदि वन में रहे तो वही उसके लिए राजप्रासाद है। परन्तु मेरी एक अभिलाषा है।

कुणाल—शीघ्र कहो, क्या अभिलाषा है।

काञ्चनमाला—भगवान् तथागत-सम्बन्धी स्थानों की यात्रा की जाय।

कुणाल—ऐसी सदिच्छा में कौन बाधा डाल सकता है? यह भगवान् बुद्ध की कृपा है कि उन्होंने इस संसार के बन्धनों से मुक्त करके हमें अपनी ओर शीघ्र आकृष्ट कर लिया है। हाँ, तो अब चलना चाहिए।

कमला—(हाथ जोड़कर) सखी! मेरी एक विनती है।

काञ्चनमाला—कहो; जो मेरी शक्ति में होगा, करूँगी।

कमला—मैं भी साथ जाने को तैयार हूँ।

काञ्चनमाला—सखी ! यह काम मेरी शक्ति से बाहर है। उपराज से निवेदन करो।

(कमला अश्रुपूर्ण नयनों से कुणाल को देखती है)

कुणाल—कमला ! यदि तुम साथ चलोगी तो और लोग भी साथ चलने का हठ करेंगे। जब इतने लोग हमारे साथ चल पड़ेंगे, तो महाराज फिर कुछ उपद्रव उठने की शङ्का करेंगे। इसलिए हमें अकेला ही जाने दो।

काञ्चनमाला—(कमला के गले लगकर) सखी ! मुझे तुम्हारा सखी-भाव सदा स्मरण रहेगा। विवश हूँ। अब बिदा दो।

कुणाल—काञ्चन ! आओ, चलें।

(कमला कुणाल के पैर छूती है और काञ्चनमाला के गले लगकर रोती है)

कमला—सखी ! मुझे भूल मत जाना।

(दोनों रोती हैं, बाहर कोलाहल सुनाई देता है)

कुणाल—प्रिये ! शीघ्र चलो। बाहर प्रजाजन एकत्र हो रहे हैं। जाना कठिन हो जायगा।

काञ्चनमाला—चलिए। सखी कमला ! विमला का ध्यान रखना।

(कुणाल का हाथ पकड़कर चलने लगती है)

कुणाल—काञ्चन ! गुप्तद्वार से चलो। बाहर प्रजाजन जाने नहीं देंगे। (दोनों का प्रस्थान)

[पटाक्षेप

——

तीसरा अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—तिष्यरक्षिता का भवन

समय—सायङ्काल

[तिष्यरक्षिता का प्रवेश]

तिष्यरक्षिता—(हर्ष से पत्र पढ़कर) अहह ! अहह ! आज मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। कुणाल का गर्व मिट्टी में मिल गया। यदि मैं चाहती तो उसके प्राणों का अन्त कर देती। किन्तु नहीं, इससे वह सारे कष्टों से ही मुक्त हो जाता, मेरे अपमान का परिणाम भोग न सकता। ऐसे व्यक्ति के लिए जीवन से सहसा छूट जाना अच्छा है सही, किन्तु मैं उसे इसी पृथ्वी पर जीवित दशा में मृत्यु का परिचय कराना चाहती हूँ। अब देखूँगी वह युवराज, नहीं (हँसकर) उपराज, वन की कन्दराओं में कैसे विचरता है, हिंस्र पशुओं से अपनी रक्षा कैसे करता है। मैं चाहती हूँ कि वह कभी मेरी दृष्टि में आ जाय तो उसकी दीनावस्था देखकर तृप्त होऊँ।

[सहसा प्रवेश करके]

आनन्दी—आ गया, महारानी ! आ गया।

तिष्यरक्षिता—(सविस्मय) क्या ? आनन्दी ! क्या आ गया ?

आनन्दी—(धीरे से) तक्षशिला से पत्र।

तिष्यरक्षिता—फिर क्या हुआ ? पत्र से क्या ?

आनन्दी—(मुसकराकर) वाह ! मुझसे बनती हैं। मेरा पुत्र आपका आवश्यक पत्र लेकर तक्षशिला गया था। अब......

तिष्यरक्षिता—हाँ, हाँ आनन्दी ! मैं भूल गई थी। अधिक प्रसन्नता के कारण यह बात मेरे ध्यान से हट गई थी कि वह ... तेरा पुत्र है। मैं समझी थी कि उस पत्र-वाहक ने यह बात बाहर फैला दी।

आनन्दी—(हँसकर) अब तो आपका मनोरथ पूरा हो गया, अतएव हम निर्धनों को भूलना उचित ही है।

तिष्यरक्षिता—(लज्जापूर्वक) वाह ! आनन्दी ! ऐसा विचार कभी मत कर। मैं तुझे कभी नहीं भूल सकती। तूने मेरे सङ्ग सखी-भाव पूरा निभाया है।

आनन्दी—मैं तुच्छ किस योग्य हूँ। मैं तो हँसी से ऐसा कहती थी। अब आपके लिए एक कठिनाई और रह गई।

तिष्यरक्षिता—वह क्या ?

आनन्दी—जब महाराज को इस घटना की सूचना मिलेगी तब ?

तिष्यरक्षिता—उँह ! इसकी कुछ चिन्ता नहीं। महाराज मेरे वश में हैं। मैं उन्हें ठीक कर लूँगी।

आनन्दी—महाराज बड़े न्याय-प्रिय हैं।

तिष्यरक्षिता—(हँसकर) न्याय की कुञ्जी मेरे हाथ है।

आनन्दी—और हम दोनों, मा-बेटे की, रक्षा आपके हाथ है।

तिष्यरक्षिता—(मुसकराकर) इसका कुछ भय मत कर।

आनन्दी—महाराज को धैर्य कैसे होगा? कुमार के कुशल-समाचार के मिलने में विलम्ब होने से वे व्याकुल हो उठते हैं।

तिष्यरक्षिता—मैंने एक जाली पत्र बनाकर महाराज के पास पहुँचाने का विचार किया है। उसमें लिखा है कि कुमार कुणाल काञ्चनमाला सहित देश-पर्यटन को चल दिये हैं। उनकी विशेष इच्छा है कि बौद्ध-स्थानों का दर्शन करें।......

आनन्दी—इससे क्या लाभ?

तिष्यरक्षिता—कुमार को महाराज कुछ समय तक देख नहीं पायेंगे। इससे कुमार के प्रति किये गये मेरे कुचक्र का उन्हें पता न चलेगा।

आनन्दी—इससे तो यह लिख देना अच्छा है कि वे भिक्षु बनकर गिरि-कन्दराओं को चले गये हैं।

तिष्यरक्षिता—नहीं; इससे महाराज के दुर्बल स्वास्थ्य को धक्का लगेगा और मेरी चाल का भी परिणाम यही रहेगा।

आनन्दी—वाह! बलिहारी है आपकी बुद्धि की! आप बड़े-बड़े चतुरों के कान काटती हैं। आपके भाग्य का सूर्य प्रचण्ड प्रताप से चमक रहा है।

तिष्यरक्षिता—हाँ, ठीक कहती है आनन्दी। आज से मैं सुख की नींद सोऊँगी।

आनन्दी—अच्छा, आप विश्राम करें, मैं जाती हूँ। (प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

—

दूसरा दृश्य

स्थान—महाराज अशोक का सुसज्जित कमरा

समय—प्रातःकाल

[महाराज अशोक कुछ विचार कर रहे हैं]

अशोक—राज्य भी एक बन्धन है। यह मणिमय मुकुट एक कण्टकमय हार है। एक गृह की रक्षा का भार सह लेना सहज है, परन्तु तब भी महात्मा लोग गृह त्यागकर भिक्षु बन जाते हैं। यहाँ एक गृह का नहीं, समस्त भारतवर्ष का राज्य-भार मेरे सिर पर है। कभी कहीं अशान्ति के कारण चिन्ता होती है, कभी पुनः शान्ति से प्रसन्नता; कभी उद्विग्नता की झलक घेर लेती है, कभी हर्ष की। तक्षशिला में विद्रोहाग्नि सुनकर चिन्ता हुई थी, पुनः शान्ति सुनकर प्रसन्नता। पुत्र-वियोग की उद्विग्नता होती है, पुत्र का कुशल-क्षेम सुनकर हर्ष।

[तिष्यरक्षिता का प्रवेश, छिपकर सुनती है]

अशोक—सन्तान के प्रति वात्सल्य एक विचित्र वस्तु है। सन्तान-वाले पुरुष का हृदय कोमल होता है, निःसन्तान का पाषाण।......

तिष्यरक्षिता—(स्वगत) क्या महाराज ने मेरे षड्यन्त्र की सूचना पा ली ? मैं निःसन्तान हूँ। इसी लिए ये मुझे पाषाण-हृदय कहते हैं। अच्छा, और आगे सुनती हूँ।

अशोक—दुःस्वप्न के कारण मन भयभीत हो रहा था। आज तक्षशिला से पत्र मिला है। हृदय......

तिष्यरक्षिता—(चिन्तित होकर, धीरे से) हाय ! कौन सा पत्र ? इन्हें कुणाल के अन्धे होने की सूचना मिल गई ?

अशोक—हृदय कुछ शान्त हुआ है।

तिष्यरक्षिता—(स्वगत) अरे ! मैं व्यर्थ ही शङ्का कर रही थी। इनका हृदय तो शान्त है, मैं क्यों अशान्त होऊँ ? अच्छा, अब सामने जाती हूँ।

[प्रकट होकर शिष्टाचार के पश्चात्]

अशोक—(सहर्ष) प्रिये ! आओ। मैं बहुत समय से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।

तिष्यरक्षिता—(सानन्द) स्वामिदेव ! आज इस प्रतीक्षा की आवश्यकता कैसी ?

अशोक—तिष्ये ! आज एक शुभ सूचना मिली है।

तिष्यरक्षिता—क्या ?

अशोक—तक्षशिला से पत्र मिला है। लिखा है कि कुमार ने विद्रोह को पूर्णतया शान्त कर दिया। राज्य-सञ्चालन में कई आवश्यक सुधार किये हैं, जिनके कारण कुमार सर्वत्र लोक-हितैषी, न्याय-प्रिय प्रसिद्ध हो रहा है।

तिष्यरक्षिता—(कृत्रिम हर्ष से) कुमार सकुशल है, यह सुनकर भगवान् का कोटिशः धन्यवाद है। सपूत पिता का यश-प्रसार ही करता है।

अशोक—किन्तु एक चिन्ता है।

तिष्यरक्षिता—चिन्ता कैसी ?

अशोक—इस प्रकार राज्य को सुव्यवस्था कर कुमार सस्त्रीक देश-पर्यटन को चल दिया है। उसकी इच्छा है कि विशेष-कर बौद्ध-स्थानों के दर्शन करे।

तिष्यरक्षिता—इसमें चिन्ता क्या ? कुमार सीधा पाटलिपुत्र न पहुँचकर इधर-उधर देश-पर्यटन कर पहुँच जायगा।

अशोक—कुमार को देखने की इच्छा थी। अब यह इच्छा शीघ्र सफल न होगी।

तिष्यरक्षिता—(स्वगत) कुणाल के लिए कितना स्नेह है ? (प्रकट) महाराज! कुमार पूर्ण युवा है। अपनी रक्षा करने में समर्थ है। चिन्ता मत कीजिए। समय की कुछ बात नहीं। देश-पर्यटन से मनुष्य वह अनुभव प्राप्त करता है, जो अन्यथा दुर्लभ है।

अशोक—तुम कहती तो ठीक हो, किन्तु अधिक स्नेह-वश चिन्ता होती ही है।

तिष्यरक्षिता—आप चिन्ता छोड़ें, निश्चिंत होकर अपने दुर्बल शरीर का ध्यान करें। चिन्ता शरीर को क्षीण करती है और चिन्ता का मैं यहाँ कुछ अवसर नहीं देखती।

अशोक—तिष्ये ! राज्य-सञ्चालन ऐसे नहीं हो सकता। कोई न कोई चिन्ता तो हम लोगों को लगी ही रहती है।

तिष्यरक्षिता—इसी लिए तो मैं नम्र निवेदन करती हूँ कि आप कुछ समय और विश्राम करें।

अशोक—यही सही। अग्रामात्य राधागुप्त राज-कार्य में चतुर हैं। उनके होते हुए मुझे कुछ विशेष चिन्ता नहीं।

तिष्यरक्षिता—(मुसकराकर) महाराज ! राज-कार्य की चिन्ता भला कैसी ? अब तो राज-कार्य का अनुभव मैं भी कर चुकी हूँ। (हँसती है) राज्य करना कुछ कठिन नहीं।

अशोक—(मुसकराकर) कठिनाई तब मालूम देती है जब विद्रोह, महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अकाल, शत्रु द्वारा आक्रमण आदि का अवसर आ पड़ता है। राजा और मन्त्रि-परिषद् की बुद्धि तभी परखी जाती है।

तिष्यरक्षिता—इन कठिनाइयों का प्रतिकार समय सुझा देता है।

अशोक—समय नहीं, अनुभव।

तिष्यरक्षिता—अच्छा, दोनों सही। इन नीरस बातों को छोड़िए।

अशोक—हाँ, कोई रसीला प्रसङ्ग छेड़ो। एक-आध गाना गाओ।

तिष्यरक्षिता—(मुसकराकर) आप भी गाने में साथ दें।

अशोक—वाह, तिष्ये ! यह नहीं। गाना सुनने में मुझे जो आनन्द आता है, वह साथ गाने में नहीं। तुम्हीं गाओ।

(तिष्यरक्षिता गाती है)

क्षीर सा उज्ज्वल, मनोरम चन्द्र सा।
सुरभि सा अतिशय प्रमद अनुराग है।
सम्पदा धनराज की, पद इन्द्र का—
है सुखद क्या ? जो सुखद अनुराग है ॥क्षीर०॥

प्रेम-भाजन में हृदय, उसमें उमङ्ग।
औ' उमङ्गों में विशद अनुराग है ॥चीर०॥
　　यदि सफल अनुराग, तो जीवन सफल।
　　चार फल से भी महत् अनुराग है ॥चीर०॥
है तभी अनुराग, हो दोनों तरफ़।
अन्यथा पद-पद विपद अनुराग है ॥चीर०॥
　　चाहिए, अनुराग की अरचा करें।
　　लोक-वरदों का वरद अनुराग है ॥चीर०॥

[पट-परिवर्तन

Chaman Lal Mia IInd year 158 Roll No.
27.11.62

तीसरा दृश्य

स्थान—अग्रामात्य राधागुप्त का भवन

[अग्रामात्य प्रसन्न वदन बैठे हैं]

राधागुप्त—(सहर्ष) उपराज कुणाल ने बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लिया। पत्र द्वारा विदित हुआ है कि तक्षशिला में अब शान्ति स्थापित हो गई। विद्रोही विद्रोह-भाव त्यागकर पुनः राजभक्त हो गये। शत्रु-दल के सहायक निराश होकर पुनः शान्त हो गये। कुमार ने अत्याचारों से पीड़ित पुरुषों को समुचित पारितोषिक दिया है और दुराचारी राजाधिकारियों को दण्ड। यही इस समय........

[देवदत्त का प्रवेश]

देवदत्त—(शिष्टाचार के पश्चात्) अग्रामात्य ! क्या आज्ञा है ?

राधागुप्त—कहिए, क्या नवीन समाचार है ?

देवदत्त—तक्षशिला से महाराज को एक पत्र मिला है।

राधागुप्त—कब ?

देवदत्त—आज।

राधागुप्त—पत्र में क्या लिखा है ?

देवदत्त—अग्रामात्य ! क्या कहूँ ? एक ऐसा ही समाचार है।

राधागुप्त—(चिन्तापूर्वक) क्या पुनः विद्रोह आरम्भ हो गया ?

देवदत्त—नहीं, अमात्यश्रेष्ठ ! विद्रोह नहीं, उपराज कुणाल देश-पर्यटन को चल दिये हैं। बौद्ध-स्थानों के दर्शन करने की उन्हें विशेष इच्छा है।

राधागुप्त—(सविषाद) ओह ! कुमार कुणाल संसार से कहीं विरक्त न हो जायँ। पहले महाराज अशोक की ऐसी ही इच्छा ने यह विकराल रूप धारण कर लिया था कि वे राज्य त्यागकर भिक्षु बनने को उद्यत हो गये थे। ऐसा होने पर महाराज के हृदय पर कुठाराघात हो जायगा।

देवदत्त—निःसन्देह; इसी चिन्ता से सम्राट्देव, सुना है, कुछ उदासीन हो रहे हैं।

राधागुप्त—महाराज की उदासीनता की मुझे चिन्ता नहीं। मैं जानता हूँ कि महारानी तिष्यरक्षिता महाराज के इस रोग की महान् औषध है। मुझे तो अधिक चिन्ता कुमार की है।

देवदत्त—अग्रामात्य ! आपका कथन ठीक है। महारानी तिष्यरक्षिता ने महाराज को उदासीन देखकर जब अपना गायन-रूपी अमोघास्त्र छोड़ा होगा, तब महाराज प्रसन्न हो उठे होंगे।

राधागुप्त—गुप्तचर ! मैं यह भी नहीं चाहता कि महाराज राज-कार्य से मुँह मोड़कर अन्तःपुर में ही फँसे रहें। तिष्यरक्षिता ने महाराज के मन की गति विचित्र कर दी है। जितना धर्म-कर्म का दृढ़ बन्धन है, उतना ही प्रेम का विकट पाश। मैं नहीं चाहता कि इस वृद्धावस्था में महाराज ऐसे भोग-

विलास के वशीभूत होकर अपनी सुकीर्ति का इति कर दें; यश-सञ्चय की आहुति दे डालें।

देवदत्त—आपका कहना ठीक है। किन्तु महाराज जब से महारानी द्वारा नीरोग हुए हैं, तब से उन पर महारानी का प्रभुत्व और भी बढ़ गया है। आपको स्मरण है कि जब महारानी ने महाराज की चिकित्सा का भार लिया था, तब महाराज के आसपास किसी अन्य व्यक्ति का प्रवेश दुर्गम हो गया था। कुछ दिनों तक कोई गुप्तचर भी राज-प्रासाद में प्रवेश न पा सका था।

राधागुप्त—देवदत्त! क्या कहें? यह बड़ी चतुर और चञ्चल-प्रकृति की स्त्री है। (सोचते हैं)

देवदत्त—प्रभो! अब मेरे लिए क्या आज्ञा है?

राधागुप्त—कुछ नहीं। अब विश्राम करो।

देवदत्त—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

—

चौथा दृश्य

स्थान—एक भयानक वन

[कुणाल और काञ्चनमाला का प्रवेश]

कुणाल—प्रिय काञ्चन ! तनिक ठहर जाओ। पैर में कुछ चुभ गया है।

काञ्चनमाला—(सविषाद) नाथ ! (पैर पकड़कर देखती है) कहाँ चुभा है ?

कुणाल—यहाँ (हाथ से दिखाते हैं)।

(काञ्चनमाला काँटे को बाहर निकाल देती है; और चीर फाड़कर पट्टी बाँध देती है)

कुणाल—नेत्र न होने से मैं विवश हो गया हूँ। चलते-चलते मन ऊब गया है। कहाँ स्वतन और कहाँ मगध ! इस समय चला नहीं जाता।

काञ्चनमाला—(दुखी होकर) प्राणाधार ! सायङ्काल होने को है। वन अनेक जन्तुओं से घिरा हुआ है। अच्छा हो, यदि इस समय वन से निकलकर रात्रि के विश्राम के लिए कहीं स्थान ठीक कर लिया जाय।

कुणाल—प्रिये ! अच्छा, चलता हूँ।

(दोनों चलते हैं)

कुणाल—अभी सायङ्काल होने में पर्याप्त समय होगा। वन घना है, इस कारण सूर्य का प्रकाश कम पहुँचता है और शीघ्र दिन डूबने की शङ्का होती है।

काञ्चनमाला—सम्भव है, आपका अनुमान ठीक हो। अभी हम उतना भी नहीं चल पाये जितना प्रतिदिन चलते हैं।

कुणाल—प्रिये ! मेरे कारण तुम्हें यह दुःख और घोर यातनाएँ सहनी पड़ीं। यदि मेरे नेत्र होते तो यह यात्रा बेखटके समाप्त हो जाती। हाय ! मेरे कारण तुम्हें आपत्ति में गिरना पड़ा।

काञ्चनमाला—आपत्ति ! आपत्ति आपके लिए है, मेरे लिए यह आपत्ति नहीं, सुख है। स्त्री का सुख पति की चरण-सेवा में है। पति की चरण-रज स्त्री के लिए धन और ऐश्वर्य है। मैं अपने कर्त्तव्य से पीछे नहीं हट सकती।

कुणाल—काञ्चन ! तुम धन्य हो ! भगवान् ने तुम जैसी अर्धाङ्गिनी देकर मेरा हित किया है।

काञ्चनमाला—मेरे द्वारा क्या हित होता ? आप ही के सङ्ग से मेरा हित हो जाता है। देखिए, सामने प्रकाश दिखाई देने लगा है। (स्वगत) अरे ! ये देखेंगे क्या ? (प्रकट) वन समाप्त होने को है।

कुणाल—दिन कितना रह गया है ?

काञ्चनमाला—सूर्य अस्त होने को है। अब शीघ्र विश्राम करने का अवसर प्राप्त होगा। मैं स्थान ठीक करती हूँ। शान्त होकर भगवद्भजन कर लें।

कुणाल—जैसा उचित समझो।

(एक स्वच्छ स्थान पर दोनों रुक जाते हैं, कुणाल बैठ जाते हैं; काञ्चनमाला जल लाने जाती है। कुणाल गाते हैं)

शोक न कर मन ! बीत गई का।

काञ्चन-कोश, करीन्द्र-निकर का; कमनीयाकृति रम्य मही का ॥शोक०॥

कैरव, कैरव-कान्त, कौमुदी; कुन्द, कुशेशय, कास-विकास।

हृदयाह्लादक मादक मन का; जो है, है वय अस्थायी का ॥शोक०॥

दास्य-स्वाम्य, वैभव-दारिद्र्य; पारतन्त्र्य-स्वातन्त्र्य प्रमुख यह।

सुख-दुखदायक भौतिक सब कुछ; क्षण भर है, कब नित्य किसी का ॥शोक०॥

[प्रवेश करके]

काञ्चनमाला—(गाना सुनकर धीरे से) कैसा मधुर स्वर है ! यहीं रुककर सुनती हूँ। मेरा शब्द इनके गाने की धुन में बाधा डालेगा।

(गाना सुनाई देता है)

दास्य-स्वाम्य, वैभव-दारिद्र्य; पारतन्त्र्य-स्वातन्त्र्य प्रमुख यह।

सुख-दुखदायक भौतिक सब कुछ; क्षण भर है, कब नित्य किसी का ॥शोक०॥

काञ्चनमाला—(धीरे से) अरे ! भगवान् की प्रार्थना का समय व्यतीत हुआ जा रहा है। इन्हें मुँह-हाथ धोने के लिए कहती हूँ। (आगे बढ़कर) नाथ ! मैं जल ले आई हूँ। प्रार्थना से निवृत्त होकर जलपान कर लीजिए।

कुणाल—(चौंककर) काञ्चन ! तुम आ गईं ? अच्छा, लाओ जल।

(काञ्चनमाला मुँह-हाथ आदि धुलाती है)

कुणाल—अहह! अब सब श्रम जाता रहा। मानो जल के साथ श्रम नीचे बह गया। आओ, प्रिये! अब शान्त-चित्त से भगवदाराधन कर लें।

काञ्चनमाला—हाँ, आरम्भ कीजिए।

(दोनों प्रार्थना करते हैं)

हे दीनबन्धु! दयानिधे! दुख दग्ध दीनों के करो।
सङ्कट-कटक को काट करुणाकर! कलुप-कुल कुल हरो॥
नित चित निरीह निगम-अगम निर्गुण निखिल-नायक तिरे!
पड़ते प्रभो! पद पाप-पथ पर प्रचुर प्रतिपल पर डरे॥
परमेश! परहित-लीनता पर हीनता पावें नहीं।
दुर्गुण दुराशा-देव का दामन दुखद दावें नहीं॥
लोकत्रयप! त्रय-ताप का पावक न दाहक हो कभी।
इस भव्य भारत-भूमि पर फिर भद्र-भागी हों सभी॥

[पट-परिवर्तन

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र में राज-प्रासाद का द्वार

[कुणाल और काञ्चनमाला आते दिखाई देते हैं]

काञ्चनमाला—(द्वारपाल के पास आकर) द्वारपाल ! सम्राट्‌देव से निवेदन कर दो कि दो यात्री दर्शन की इच्छा से आये हैं। सम्राट्‌देव दर्शन देकर अनुगृहीत करें ।

द्वारपाल—(कुणाल को देखकर स्वगत) अरेरे ! आज प्रातःकाल ही अन्धा दिखाई पड़ा । भगवान् कुशल करें । (प्रकट) भद्रे ! यह समय सम्राट्‌देव के दर्शन का नहीं । इस समय जाओ, फिर आ जाना ।

कुणाल—द्वारपाल ! मैं अन्धा हूँ। वारम्बार आना कठिन है; अब दर्शन करा दो ।

द्वारपाल—आये हैं बड़े कहीं के महात्मा ! अभी दर्शन करा दो। अरे ! आँखें तो हैं नहीं, और करेंगे दर्शन ! बुद्धि ठिकाने है या नहीं ?

काञ्चनमाला—द्वारपाल ! प्रजाजनों के प्रति तुम्हारा व्यवहार अति अशिष्ट है। किसी अन्धे को अन्धा कहकर उसका मन दुखाना उचित नहीं ।

द्वारपाल—अहहह ! क्या तुम्हें सच बोलना नहीं सुहाता ? सच बोलनेवाला अन्धे को अन्धा ही कहेगा या और कुछ ?

काञ्चनमाला—ऐसा सत्य कहने की अपेक्षा मौन रहना अच्छा है।

द्वारपाल—ऐसा ही सही, अब कुछ न कहूँगा।

काञ्चनमाला—यह बता दो कि सम्राट्देव इस समय कहाँ हैं।

(द्वारपाल मौन रहता है)

काञ्चनमाला—द्वारपाल ! बोलते क्यों नहीं ?

(द्वारपाल पुनः मौन रहता है)

कुणाल— यह द्वारपाल बड़ा धूर्त है। अरे द्वारपाल ! बताता क्यों नहीं कि सम्राट्देव इस समय कहाँ हैं।

द्वारपाल—(सक्रोध) बड़ी कठिन समस्या है। बोलूँ तो सत्य कहने से मन दुखाता हूँ; न बोलूँ तो धूर्त कहलाता हूँ। किसी तरह छुटकारा नहीं।

कुणाल—तो उत्तर नहीं दोगे ?

द्वारपाल—जाओ, जाओ; सम्राट् कहीं हों तुम्हें क्या ?

(टहलता है)

काञ्चनमाला—द्वारपाल ! तो हम जायँ ?

द्वारपाल—(कुछ दूरी से) आपको कौन रोकता है ? जाओ, जाओ।

(निराश होकर कुणाल और काञ्चनमाला लौटते हैं। मार्ग में)

कुणाल—भगवान् की विचित्र माया है। यही राजप्रासाद है जहाँ पर मेरा पहले इतना सत्कार था और आज इतना अपमान ! मनुष्य का सुख-दुःख सूर्य के उदय तथा अस्त होने के समान है।

काञ्चनमाला—-नाथ ! सुख-दुःख में जो एक-सा रहता है, वह धीर कहलाता है। सूर्य उदय तथा अस्त समय पर समान रहता है। इस घटना का दुःख मत मानिए। अभी तो यहाँ हम कुछ दिन और रुकेंगे, फिर किसी समय इनके दर्शन हो जायेंगे।

कुणाल—न तो मैं इतनी सी बात पर अधीर होता हूँ और न कोई महान् कारण होने पर धैर्य त्याग सकता हूँ। मेरा वचन तो विधि-विडम्बना के प्रति था। अभिलाषा थी कि पूज्य-जनों की चरण-रज लेकर प्रसन्नता प्राप्त करूँ। इसके पश्चात् शेष स्थानों की यात्रा आरम्भ करूँ।

काञ्चनमाला—(एक स्थान पर रुककर) कुछ यहाँ विश्राम कर लें। मैं थक गई हूँ।

कुणाल—हाँ, विश्राम कर लो।

काञ्चनमाला—(इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर) यह सामने उपवन दिखाई देता है। वहाँ चलकर विश्राम करते हैं।

(कुणाल का हाथ पकड़कर उधर चलती है)

[पट-परिवर्तन

———

छठा दृश्य

स्थान—सम्राट् अशोक का राजप्रासाद

समय—सायङ्काल

[राजप्रासाद के सामने पथ पर कुणाल और काञ्चनमाला बैठे हैं। कुणाल वीणा के साथ गा रहे हैं। आनन्द-गुप्त, भवगुप्त और बुद्धगुप्त पास पहुँचते हैं।]

बुद्धगुप्त—आज इस मार्ग पर आना सफल हो गया। कितना सुन्दर गाना है।

भवगुप्त—और कितना चतुर वीणा का बजाना!

आनन्दगुप्त—(सोचकर) भाई! मुझे स्मरण आता है कि मैंने वीणा के साथ ऐसा गाना पहले कहीं सुना है।

बुद्धगुप्त—स्मरण नहीं आता। अच्छा, फिर सुनते हैं।

है जगत में उठा ज्यों बुलबुला।
शोक क्या? जब भेद यह नर पर खुला॥
अज्ञ जानें यह सुधा-रस-सार है।
ज्ञानियों को दीखता है विष-घुला॥ है०॥

भवगुप्त—(गाना सुनकर) स्मरण तो आता है कि इस कण्ठस्वर के सदृश किसी का गाना सुना है। (सोचकर) हाँ, स्मरण आया कि हमारे अशोकाराम विहार में कुमार कुणाल प्रायः

आकर गीत द्वारा मनोविनोद किया करते थे। कितने सुन्दर नेत्र थे !

आनन्दगुप्त—परन्तु यह नेत्रहीन कौन है? यह कुमार नहीं हो सकता।

बुद्धगुप्त—अजी जाने भी दो। कोई होगा। क्या स्वर-सादृश्य इस संसार में दुर्लभ है? चलो, सायङ्कालीन प्रार्थना का समय हो रहा है। विहार में शीघ्र पहुँच जायँ।

आनन्दगुप्त—हाँ, चलो। गाने का क्या? प्रार्थना के समय विहार में अवश्य पहुँच जाना चाहिए। (तीनों का प्रस्थान)

(सम्राट् अशोक राजप्रासाद में बैठे हैं, कुणाल का
गाना सुनाई देता है)

दुःखदायक हैं सभी, जो हैं यहाँ।
नाम के सुत, बन्धु, दारा मंजुला ॥ है० ॥
भूल मत; दो-चार दिन का है विभव।
दैव है जग को रुलाने पर तुला ॥ है० ॥

अशोक—(गाना सुनकर मन में) यह मधुर स्वर किसका है? यह वीणा का झङ्कार मेरी हृत्तन्त्री को क्यों ताड़ित कर रहा है? (गाना फिर सुनते हैं).

यह न जीवन, किन्तु है मृग-तृष्णिका।
व्यर्थ तू इस पर न अपना मन डुला ॥ है० ॥

अशोक—(विचारकर) यह स्वर तो परिचित जान पड़ता है। कुमार कुणाल के स्वर का आभास होता है। (गाना फिर सुनते हैं)

आत्म-तत्त्व-ज्ञान है उसके लिए।
चित्त जो वैराग्य-जल से हो धुला ॥ है० ॥

अशोक—(द्वारपाल को बुलाकर) बाहर मार्ग में वीणा के साथ कौन गा रहा है ? पता लगाओ।

द्वारपाल—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

द्वारपाल—(कुणाल के पास पहुँचकर और उसे देखकर, स्वगत) वाह रे अन्धे ! तेरा गाना तो बहुत अच्छा है। सम्राट् भी रीझ गये ! (लौट जाता है)

काञ्चनमाला—(द्वारपाल को लौटते देखकर) प्राणनाथ ! कोई राजसेवक इधर आया था। हमें देखकर लौट गया है। कदाचित् महाराज को सूचना देगा।

कुणाल—भोली काञ्चन ! यह सूचना न देगा। कहीं कार्यवश जाता रहा होगा; मुझ अन्धे को देख, अपशकुन समझकर, वापस चला गया है। (काञ्चनमाला चुप रहती है)

[सम्राट् के पास प्रवेश करके]

द्वारपाल—सम्राट् ! यह कोई अन्धा भिखारी गा रहा है, कुमार नहीं।

अशोक—अच्छा, जाओ। मुझे धोखा हुआ होगा। (द्वारपाल का प्रस्थान)

(गाना फिर सुनाई देता है)

हो मुमुक्षु; आ शरण भगवान् की।
है फँसाने को विषय दृग-वागुरा ॥ है० ॥

अशोक—फिर वही मनोहर ध्वनि! वीणा की वही परिचित झंकार! आज मेरे कानों को क्या हो गया है? द्वारपाल कहता है कि यह गानेवाला कोई अन्धा भिखारी है; किन्तु स्वर-सादृश्य से मुझे बोध होता है कि यह मेरा प्रिय कुणाल है। (द्वारपाल को बुलाकर) द्वारपाल! यह स्वर तो कुमार के स्वर-सदृश है। कदाचित् कुमार कुणाल ही हो, भीतर ले आओ।

द्वारपाल—जो आज्ञा। (जाता है और कुणाल के आस-पास देखता है) यहाँ तो वही एक अन्धा है। सम्राट् को भ्रम हो गया है। छिः, कहाँ कमल-नयन कुमार कुणाल और कहाँ नरक-मूर्ति यह भिखारी! (कुमार के पास जाने लगता है)

काञ्चनमाला—स्वामिदेव! वही राजसेवक हमारे निकट आ रहा है।

कुणाल—कदाचित् पूज्यपाद पिताजी ने मेरे परिचित कण्ठस्वर को पहचानकर मुझे देखने के लिए भेजा हो।

काञ्चनमाला—सम्भव है, आपके वचन सत्य निकलें।

द्वारपाल—(कुमार के सम्मुख खड़ा होकर) मान्यवर! आपका शुभागमन कहाँ से हुआ? कब आये? कहाँ जाना है?

कुणाल—मेरा अशुभागमन है या शुभागमन! मैं कुछ नहीं जानता। हाँ, इतना जानता हूँ कि मुझे सम्राट् के दर्शनों की तीव्र लालसा है। यदि यह पूर्ण हो जाय तो तुम्हारी कृपा होगी।

द्वारपाल—वाह! अपना नाम-धाम तो कुछ बताते नहीं और महाराज से भेंट करना चाहते हो? यह असम्भव है।

कुणाल—बतायें क्या ? समस्त भारतवर्ष पर सम्राट् का प्रभुत्व है। सब भारतवासी इनकी प्रजा हैं। इसी नाते इनके दर्शनों का प्रार्थी हूँ।

द्वारपाल—(काञ्चनमाला की ओर देखकर) यह देवी कौन है ?

कुणाल—यह मेरी स्त्री है; मुझ नेत्रहीन का आश्रय है।

काञ्चनमाला—(नम्र भाव से) हमें सम्राट् के दर्शन करा दो, कृपा होगी।

द्वारपाल—अच्छा, जाता हूँ। सम्राट् से निवेदन करता हूँ। (प्रस्थान)

[सम्राट् के पास प्रवेश करके]

द्वारपाल—सम्राट्! वह अन्धा कुमार कुणाल कभी नहीं हो सकता। कुमार को इस तरह मार्ग पर बैठकर गाने से क्या प्रयोजन ? उसके साथ एक स्त्री है। उन दोनों को आपके दर्शनों की अभिलाषा है।

अशोक—एक अन्धा, स्त्री के साथ ! जान पड़ता है कि कुणाल काञ्चनमाला के साथ आया है।

द्वारपाल—(सविस्मय) राजाधिराज ! आज आपको कुमार का भ्रम बार-बार क्यों हो रहा है ? इस अन्धे के बड़े-बड़े केश हो रहे हैं, बड़े-बड़े नख अँगुलियों से बढ़ गये हैं, दाढ़ी लम्बी-लम्बी हो रही है। यह हमारे नयन-प्रिय कुमार का रूप नहीं हो सकता। यदि कुमार कुणाल होते तो उन्हें राज-

प्रासाद में प्रवेश करने की आज्ञा माँगने की आवश्यकता क्यों होती ? बाहर मार्ग में वे गाते ही क्यों ?

(गाना फिर सुनाई देता है)

अशोक—द्वारपाल ! यह कुणाल की ही वीणा का स्वर है। ऐसी सुन्दर वीणा और कोई बजा नहीं सकता। तुम इस पुरुष को, वह कोई भी क्यों न हो, मेरे सम्मुख ले आओ। विलम्ब मत करो।

द्वारपाल—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

[कुमार तथा काञ्चनमाला के साथ प्रवेश]

कुणाल और काञ्चनमाला—सम्राट्देव के चरण-कमलों में हम दोनों का प्रणाम स्वीकृत हो।

अशोक—आप पर भगवान् की कृपा-दृष्टि हो। (कुणाल की ओर ध्यान से देखकर, स्वगत) आकार आदि सब कुणाल के सदृश है। नेत्र-ज्योति न होने से मुख-कान्ति नष्ट हो गई है। धूप आदि के कारण त्वचा का रङ्ग भी बदल गया है। अन्यथा यह सौम्य मूर्त्ति कुमार के सिवा और किसकी हो सकती है ? अथवा एक सदृश रूप जगत् में अनुपलब्ध नहीं है। (प्रकट) महानुभाव ! तुम्हारा नाम क्या है ? कहाँ से आये हो ?

कुणाल—सम्राट् ! मैं एक अन्धा भिखारी हूँ। मेरा नाम-धाम जानने से क्या लाभ ?

अशोक—(स्वगत) यह तो वही परिचित स्वर है। यदि यह कुमार होता तो अवश्य अपने आपको प्रकट कर देता। यह क्या रहस्य है? (प्रकट, कुमार की ओर देखकर) राजभक्त! देखो, यदि तुम्हारे हृदय में मेरे लिए तनिक भी आदर हो, तो अपना नाम बताओ।

कुणाल—(स्वगत) पूज्यपाद पिताजी के इन वचनों का निरादर क्योंकर हो? अच्छा, प्रकट हो जाता हूँ, फिर सब स्थिति सँभाल लूँगा। (स्पष्ट) पिताजी! मैं कुणाल हूँ। (चरण-स्पर्श करते हैं)

अशोक—(उठाकर, आलिङ्गनपूर्वक) कुणाल! तुम्हारी यह अवस्था! (मूर्च्छित हो जाते हैं और सचेत किये जाने पर सावेग, कुणाल को छाती से लगाकर) कुमार! कुमार! तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? शीघ्र कहो।

कुणाल—पिताजी! बीती बात का शोक नहीं करना चाहिए, यह मुनियों का वचन है। कर्म-बन्धन बड़ा दृढ़ है। इससे न तो कोई जिन मुक्त हुआ और न कोई बुद्ध ही। आप चिन्ता न करें।

अशोक—मेरे शरीर में आग लग रही है। शीघ्र बताओ, किसने अपने प्राणों का मोह त्यागकर यह कुकर्म किया है। तुम्हारे कमल-वदन की शोभा किसने बिगाड़ी है?

कुणाल—पिताजी! मैंने ही अपराध किया है, मैं ही अपराधी हूँ। अपने किये कर्म के फल को मैं कैसे कह दूँ कि यह दूसरे ने किया है?

अशोक—पुत्र कुणाल ! यदि ऐसा कुकर्मी मेरे राज्य में बिना दण्ड पाये बच सकता है, तो मेरा राज्य वृथा है। अवश्यमेव उस कुकर्मी के प्राण-पखेरू उड़नेवाले हैं। पुत्र ! मैं शोकाग्नि से दग्ध हो रहा हूँ। शीघ्र कहो, किसके प्राण हरूँ।

कुणाल—पूज्यपाद ! मुझे बड़ा अचम्भा होता है। आप मुझ राजद्रोही कुल-कलङ्क कुणाल पर इतनी कृपा क्यों दिखा रहे हैं !

अशोक—(साश्चर्य) कुणाल और राजद्रोही ! कुणाल और कुल-कलङ्क !! असम्भव है ! यह कदापि नहीं हो सकता। कुणाल ! तुम क्या कह रहे हो ?

कुणाल—पिताजी ! तक्षशिला के प्रधान मन्त्री के पास दन्तमुद्रित एक पत्र पहुँचा था जिसमें मुझे राजद्रोही और कुल-कलङ्क ठहराकर नेत्रहीन करके निर्वासित किये जाने की आज्ञा दी गई थी। अहोभाग्य है, यदि मेरे नेत्र क्या, मेरा समस्त शरीर आपकी सेवा में आ सके।

अशोक—कुणाल ! तुम्हें उन्माद हो गया है। मैंने ऐसा कोई पत्र नहीं लिखा। (सोचकर) हाय ! मुझे स्मरण आया कि एक बार रात में मुझे स्वप्न दिखाई दिया था। मैंने तब देखा था कि दो गिद्ध तुम्हारे दोनों नेत्रों को निकालकर ले गये हैं और तुम केश, नख और दाढ़ी के बढ़ जाने से कुरूप होकर पाटलिपुत्र में पहुँचे हो। हाँ, मैं ठीक वही रूप आज तुम्हारा देख रहा हूँ। मेरे दुर्भाग्य से वह दुःस्वप्न सत्य निकला।

तिष्यरक्षिता मुझे झूठा आश्वासन देती थी कि कुमार स्वस्थ हैं, सकुशल हैं। मेरे दुःस्वप्न का उस पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा था। (स्वगत) परन्तु वह उस समय मेरे शयन-गृह में आइ क्यों थी और मेरे सो जाने पर चली क्यों गई थी? (सोचकर) कहीं उसने तभी तो पत्र पर दन्तमुद्रा नहीं लगा ली? सम्भव है, यह कपट तिष्यरक्षिता का हो। वह कुणाल से ईर्ष्या करती है। मिथ्या अभियोग लगाकर, उसने कुणाल को नेत्र-हीन किया है। जाता हूँ, (सक्रोध) उस राक्षसी से सब वृत्तान्त पूछता हूँ। (जाते हैं, जाते हुए पीछे देखकर) कुमार तथा पुत्रवधू! तुम दोनों वस्त्र आदि बदलकर विश्राम करो। मैं शीघ्र आता हूँ। (प्रस्थान)

(कुणाल और काञ्चनमाला का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन

———

सातवाँ दृश्य

स्थान—परिषद्-गृह

[सम्राट् अशोक, अमात्यवर्ग, महामात्र तथा कुमार कुणाल, काञ्चनमाला आदि यथोचित स्थान पर बैठे हैं। तिष्य-रक्षिता अभियुक्ता के रूप में खड़ी है]

अशोक—अमात्यवर्ग तथा महामात्र आदि सज्जनो! आपको अब विदित हो गया कि तिष्यरक्षिता ने कैसा भयङ्कर अपराध किया है। आप इसका दण्ड निश्चित करें। अग्रामात्य जी! आपका क्या विचार है?

राधागुप्त—सम्राट्! अपराधी का सम्बन्ध राजवंश से है। उसके अत्याचार से पीड़ित पुरुष का भी सम्बन्ध राजवंश से है। मेरी सम्मति में तो उचित यह है कि इसका निर्णय स्वयं सम्राट् करें।

अशोक—अग्रामात्य! आपका कथन अनुचित नहीं, किन्तु उचित भी नहीं है। मैं ऐसा राजपुरुष चाहता हूँ जो अवसर पड़ने पर मेरी ओर भी अँगुली उठा सके। तब दूसरों की क्या बात?

न्यायामात्य—सम्राट्! यह आपने ठीक कहा है कि अवसर पड़ने पर राजपुरुष आप पर भी अँगुली उठा दें। यह तभी हो सकता है जब आप प्रजा के विरुद्ध, या राज्य-हित के प्रतिकूल,

कुछ चेष्टा करना चाहें। यह अभियोग तो आपके गृह-कलह का परिणाम है। आप जो उचित समझें, करें। हम......

अशोक—न्यायामात्य! गृह-कलह कैसे? क्या कुमार कुणाल का आपसे, प्रजा से तथा राज्य से कुछ सम्बन्ध नहीं?

न्यायामात्य—सम्राट्! सम्बन्ध तो घनिष्ठ है किन्तु अपराधी का सम्बन्ध भी वैसा ही है। अतएव इस अभियोग में सम्राट् ही प्रमाण हैं।

अशोक—अग्रामात्य! आप जानते हैं और मुझसे भी छिपा नहीं है कि अग्र-महिषी आपसे द्वेष करती है। मैं समझता हूँ कि इसी कारण आप इस समय अपनी सम्मति प्रकट नहीं करते।

अग्रामात्य—हाँ, यह भी सम्मति न देने का एक कारण हो सकता है। आप मुझे क्षमा करें।

अशोक—न्यायामात्य! आप अपनी सम्मति अवश्य प्रकट करें।

न्यायामात्य—सम्राट्देव! जब आप विवश करते हैं तो कुछ कहना ही पड़ता है। अपराधी ने कुमार के दोनों नेत्र निकलवाये हैं, अतएव मेरे विचार में अपराधी के दोनों नेत्र निकलवा देना उचित दण्ड होगा।

अशोक—न्यायामात्य! और नगर से निर्वासित करवाने का कुछ दण्ड नहीं? अच्छा, सेनापतिजी! आप परामर्श दें। आपने कुछ नहीं कहा।

सेनापति—राजेश्वर! शस्त्राजीवियों के नियम कठोर होते हैं। यहाँ हमारे नियम काम न देंगे। यह सांग्रामिक घटना नहीं।

कुणाल—पिताजी ! जो मेरे कर्म थे, उनका फल मैंने पा लिया। अब माता तिष्यरक्षिता को दण्ड देने की कुछ आवश्यकता नहीं। क्या इन्हें दण्ड देने से मेरे नेत्र ठीक हो जायँगे? यदि हो जायँ तो भी मैं उन्हें कुछ दण्ड नहीं दिलवाना चाहता। वे मेरी......

अशोक—पुत्र ! तुम अभी दण्डनीति से अनभिज्ञ हो। अग्रामात्य ! आप कुमार और पुत्रवधू को यहाँ से ले जायँ; अन्यथा, मुझे भय है, हमारे निर्णय करने में बाधा पड़ेगी।

अग्रामात्य—(सहर्ष) जो आपकी इच्छा। (स्वगत) मैं इस अभियोग में कुछ सम्मति देना नहीं चाहता। अच्छा हुआ, छुटकारा मिल गया। (कुमार तथा काञ्चनमाला को साथ लेकर प्रस्थान)

अशोक—सेनापतिजी ! शस्त्राजीवियों के नियमानुसार दण्ड और कठोर हो सकता है। अपराधी का अपराध भयङ्कर है। कुमार कुणाल को तक्षशिला में विद्रोह-दमन के लिए भेजा गया था। सम्भव था कि कुमार की अनुपस्थिति के कारण फिर वहाँ कोई दुर्घटना हो जाती। उपराज कुणाल पर आक्रमण करना, उसके जीवन पर अभिघात करना, अवश्यमेव सांग्रामिक घटना गिनी जायगी। आप दण्ड का निश्चय करें।

सेनापति—(विचारकर) हाँ, आपका कथन ठीक है। सम्राट् ! अपराधी सम्राज्ञी हैं, आप इनके स्वामी हैं, कुमार आपके पुत्र हैं। आप स्वयं ही निर्णय करें।

अशोक—(सावेग) अच्छा, कोई कुछ परामर्श नहीं देता तो मैं ही निर्णय करता हूँ। तिष्यरक्षिता अभियुक्ता ने यह एक राक्षसी कर्म किया है। मेरी राय में अपराधी को हिंस्र जीवों के सामने फेंकवा देना इस अपराध का उचित दण्ड है।

(सब ओर सन्नाटा छा जाता है)

तिष्यरक्षिता—(भयभीत होकर) स्वामिदेव ! दया कीजिए।...

अशोक—(सक्रोध) तिष्यरक्षिता ! चुप रह। आज से तेरे साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। मैं तुझे देखना नहीं चाहता। (सङ्केत द्वारा बन्दीगृह के दो कर्मचारियों को बुलाकर) अपराधी को आज बन्दीगृह में रखा जाय। कल सायङ्काल तक जन्तुगृह में सिंह को भूखा रखा जाय; इसी को खाकर वह अपनी भूख मिटाये।

(रोती हुई तिष्यरक्षिता को लेकर बन्दो-गृह के कर्मचारी चले जाते हैं, सभा विसर्जित हो जाती है)

[पट-परिवर्तन



आठवाँ दृश्य

स्थान—अशोकाराम विहार

समय—मध्याह्न के पश्चात्

[आनन्दगुप्त, बुद्धगुप्त और भवगुप्त का वार्तालाप]

भवगुप्त—पाप का पात्र भरपूर हो गया। तिष्यरक्षिता की कालिमा सारी प्रजा में प्रकट हो गई।

आनन्दगुप्त—भाई ! मुझे आशा न थी कि यह स्त्री इतनी क्रूर होगी, इतना रौद्र रूप धारण कर लेगी। भगवान् ऐसी दुष्टा को सद्बुद्धि प्रदान करें।

बुद्धगुप्त—यह दुष्टा अब क्या सुधरेगी ! जो होना था, सो हो चुका।

भवगुप्त—हो क्यों चुका ? मुझे तो जान पड़ता है कि इसकी आयु अभी शेष है। कुमार कुणाल इसका दण्ड क्षमा करवाने का प्रयत्न अवश्य करेंगे; अन्यथा लोक में यही प्रसिद्ध हो जायगा कि कुमार की आँखों के बदले सम्राट् अशोक ने अपनी अग्र-महिषी को प्राण-दण्ड दिया। यह अपयश कुमार कुणाल सहन न करेंगे।

आनन्दगुप्त—आप महाराज अशोक के क्रोध को नहीं जानते। वे न्याय-पथ से तनिक भी विचलित नहीं होते।

भवगुप्त—यदि कुमार इस दण्ड-विधान में बाधा डालें, तो सम्राट् को अवश्य झुकना पड़ेगा।

बुद्धगुप्त—बाधा कैसी ?

भवगुप्त—वाह ! कुमार स्वभाव से दयालु हैं। इस अभियोग में अपराधी उनकी माता तिष्यरक्षिता है। वे समझते हैं कि मेरे

नेत्रों का निकालना मेरे पूर्व कर्मों का फल है। वे कहते हैं कि तिष्यरक्षिता को दण्ड देने से मेरे नेत्र ठीक न हो जायँगे। वे यह भी कहते हैं कि माता को अधिकार है कि वह पुत्र को चाहे जैसा दण्ड दे। इसमें अपराध कैसा ?

आनन्दगुप्त—भाइयो ! इतना तो मैंने भी सङ्घ-स्थविरजी से सुना है कि कुमार का नेत्रहीन होना उन्होंने पहले से ही जान लिया था। यह दुर्घटना टल नहीं सकती थी।

बुद्धगुप्त—(उत्सुकता के साथ) कुमार को भला अन्धा क्यों होना था ?

आनन्दगुप्त—सङ्घ-स्थविरजी ने बताया है कि कुमार कुणाल ने पिछले जन्म में एक कुणाल पक्षी के नेत्र फोड़ डाले थे। उसने शाप दिया था कि भावी जन्म में तुम्हारे नेत्र फूटें। सो यह सब कुमार की कर्मगति का फल है।

बुद्धगुप्त—आपका तात्पर्य है कि तिष्यरक्षिता का कुछ अपराध नहीं। वह निरपराध है। क्यों ?

आनन्दगुप्त—अरे भाई ! मेरा यह तात्पर्य नहीं। मैं कहता हूँ कि कुमार ने तो अपने कर्म का फल पाया है, किन्तु तिष्य-रक्षिता ने कुकर्म किया है। अतएव उसे दण्ड मिलेगा।

बुद्धगुप्त—सुना है, कल सायङ्काल के समय तिष्यरक्षिता एक क्षुधार्त्त सिंह के आगे छोड़ दी जायगी। जगत् में यह उदाहरण चिरकाल तक न्याय का डङ्का बजायगा।

भवगुप्त—भाइयो ! मुझे यही शङ्का बार-बार होती है कि

तिष्यरक्षिता की रक्षा कुमार कुणाल कर लेंगे। वे अपने दुःखदाता को बदले में दुःख नहीं देते।

आनन्दगुप्त—कुमार का चरित्र बड़ा उदार है। वे दया की मूर्त्ति हैं।

भवगुप्त—भाई ! तिष्यरक्षिता ने किया तो घोर अत्याचार है। क्या सौतेले बेटे के साथ विमाता को ऐसा बर्ताव करना चाहिए था? नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय। रोंगटे खड़े होते हैं। परन्तु मैंने तो उससे पहले ही ऐसी आशा की थी। जब इसने सात दिन का राज्य लिया था, तभी मुझे यह आशङ्का हो गई थी।

बुद्धगुप्त—हाँ-हाँ, मुझे स्मरण है। आपने तब ऐसा ही विचार प्रकट किया था।

भवगुप्त—मेरी यह भविष्यद्वाणी भी स्मरण रखना कि कुमार तिष्यरक्षिता का बाल बाँका न होने देंगे। यदि वे दण्ड को क्षमा में परिवर्तित न करा सकेंगे तो तिष्यरक्षिता के दण्डित होने से पहले ही अपने प्राणों पर खेल जायँगे।

आनन्दगुप्त—दिखाई तो ऐसा ही देता है। कुमार यदि दण्ड को क्षमा में परिवर्तित करा सकें तो उनके चरित्र की महत्ता अक्षय हो जायगी।

बुद्धगुप्त—कुमार कुणाल का नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जायगा।

भवगुप्त—किन्तु शोक यही रहेगा कि ऐसी राक्षसी अपने भार से पृथ्वी को दबाये रहेगी। आह ! कुलकलङ्किनी !

——

[पट-परिवर्तन

नवाँ दृश्य

स्थान—पाटलिपुत्र का जन्तु-गृह

समय—सायङ्काल

[दो चाण्डालों के साथ तिष्यरक्षिता का प्रवेश]

एक चाण्डाल—जल्दी चलो, महारानी ! जल्दी चलो।

तिष्यरक्षिता—मेरा पैर नहीं उठता। चलूँ कैसे ? हाय ! महारानी कहलाऊँ और ऐसा दण्ड पाऊँ ! धिक्कार है ऐसी महारानी पर !

दूसरा चाण्डाल—अब सूझा धिक्कार ! पहले सूझ कहाँ सो रही थी ?

पहला चाण्डाल—अरे चण्डसेन ! बातों में मत लगो। आगे बढ़ो। समय बीत जायगा तो महाराज क्रोध करेंगे।

चण्डसेन—अरे रुद्रसेन ! विलम्ब करने से सिंह की भूख और भड़क उठेगी। इसमें क्रोध कैसा ? अच्छा, लो बढ़ो, बढ़ो। चलते चलो।

(सिंह की गर्जना सुनाई देती है)

तिष्यरक्षिता—(काँपकर) हाय ! मैं मरी (दीन भाव से) भगवन् ! एक बार रक्षा करो। एक बार बचा लो।

रुद्रसेन—महारानी ! व्याकुल क्यों होती हैं ? क्या भगवान् ने अपने शरीर द्वारा भूख से दुखी एक सिंह की प्राणरक्षा नहीं

की थी ? अब भगवान् का स्मरण कीजिए और उनकी इस घटना पर अनुष्ठान कीजिए। संसार को दिखा दीजिए कि महारानी तिष्यरक्षिता भी भूख से व्याकुल सिंह की प्राण-रक्षा करने में तनिक भी सङ्कोच नहीं करतीं। (मुसकराता है)

चण्डसेन—हाँ, बिल्कुल ठीक है।

तिष्यरक्षिता—(रोती हुई) हाय ! सिंह की गर्जना से मेरा हृदय दहला जाता है। उसे देखकर मैं जीवित न रह सकूँगी। मेरा भयभीत हृदय दो टूक हो जायगा।

रुद्रसेन—हाँ, बस, हृदय दो टूक होते समय झट से कह दीजिएगा "नमो बुद्धाय"। तब कल्याण होगा। सिंह आशीर्वाद देगा।

चण्डसेन—और इनका जीवन परोपकारार्थ सिद्ध होगा। कल्याण के काम में विलम्ब करना ठीक नहीं, जल्दी चलो।

तिष्यरक्षिता—हाय, ये दोनों कैसे पाषाण-हृदय हैं ! मेरे तो प्राण जाने को हैं, इन्हें हँसी-ठट्ठा सूझ रहा है। चाण्डाल का हृदय भगवान् ने कैसा बनाया है !

चण्डसेन—महारानी ! यह अपने हृदय से पूछिए। माता होते हुए पुत्र के नेत्र निकलवा लेना क्या कम कठोर काम है ? जिस पदार्थ से आपका हृदय रचा गया है, उसका कुछ अंश ही हमारे हृदय में आया है। क्यों भाई रुद्रसेन ! ठीक है ?

रुद्रसेन—हाँ, बिल्कुल ठीक।

(सिंह इन्हें पास आया देखकर तीव्र गर्जना करता है)

तिष्यरक्षिता—(काँपकर) हाय, कोई बचाये ! कोई बचाये !

[रथ में कुमार कुणाल का सहसा प्रवेश; कुछ दूरी पर रथ में सम्राट् अशोक आते दिखाई देते हैं]

कुणाल—(रथ से उतरते हुए) माता ! मैं आ गया। निश्चिन्त हो जाओ।

तिष्यरक्षिता—(साश्चर्य) कौन ? कुणाल ! कुणाल ! तुम मेरी रक्षा करोगे ? नहीं, कभी नहीं। तुम मेरी हँसी करने आये हो। घाव पर नमक छिड़कने आये हो।

कुणाल—(पैर छूकर) माता ! मेरे मन में आपके प्रति तनिक भी द्वेष नहीं है। यदि अज्ञानवश द्वेष का कुछ अंकुर उत्पन्न भी हुआ होगा तो वह, नेत्रहीन हो जाने पर, भगवद्भक्ति में तल्लीन होने के कारण ज्ञान द्वारा नष्ट हो गया होगा। आपने ज्ञान-चक्षु खोलकर मेरा उपकार ही किया है। आज इसी का प्रमाण देता हूँ।

[तिष्यरक्षिता को पीछे छोड़कर सिंह की गर्जना का अनुगमन करते हुए कुणाल सिंह के पिंजड़े की ओर बढ़ते हैं। सिंह की गर्जना और भी तीव्र हो जाती है। सम्राट् अशोक घटनास्थल पर प्रवेश करते हैं]

अशोक—(रथ में बैठे-बैठे) कुणाल ! कुणाल !! ठहरो, ठहरो। तुम्हारा यह हठ ठीक नहीं। (रथ से उतरते हैं)

कुणाल—पिताजी! आज्ञोल्लङ्घन का अपराध क्षमा करें। मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार हो। [लपककर आगे बढ़ना चाहते हैं, सम्राट् अशोक पकड़ लेते हैं]

अशोक—कुणाल! दण्ड क्षमा नहीं हो सकता। न्याय पर कलङ्क नहीं लग सकता।

कुणाल—पिताजी! यदि माता तिष्यरक्षिता का कार्य अनार्य-जनोचित हुआ है तो आपका आर्योचित हो। स्त्री का वध न करें। महात्मा सुगत ने तितिक्षा का महान् माहात्म्य कहा है।

अशोक—तुम्हारा स्वभाव विचित्र है। न्याय का पालन करने में तुम दण्ड-विधान का विरोध करते हो! न्याय पर कलङ्क लगाकर तितिक्षा-मार्ग का अनुसरण करना चाहते हो। कुमार! यह सर्वथा भ्रम है। अपराधी को दण्ड देना राजा का कर्म है।

कुणाल—पिताजी! मैं यह अपयश सहन नहीं कर सकता कि पुत्र के कारण माता को प्राणदण्ड हुआ। आप यह समझें कि युद्ध में इसके नेत्र जाते रहे। तीरों ने इसके नेत्रों को अपना लक्ष्य बना लिया।

अशोक—कुमार! समझने की बात और है तथा वास्तविक बात और। चाण्डालो! विलम्ब मत करो। बढ़ो, बढ़ो।

(चाण्डाल तिष्यरक्षिता को लेकर आगे बढ़ते हैं। पिंजड़े के खुलने का शब्द सुनकर कुणाल उधर भागते हैं और ठोकर खाकर गिर पड़ते हैं)

अशोक—(कुणाल को पिंजड़े की ओर भागते देखकर) चाण्डालो ! ठहरो, अभी पिंजड़ा मत खोलो। (आगे बढ़कर कुणाल को पकड़ लेते हैं)

कुणाल—(खड़े होकर, विनीत भाव से हाथ जोड़कर) पूज्य पिताजी ! यदि आप माता को क्षमा न करेंगे तो मेरा भी यहीं अन्त हो जायगा। यदि आप मुझे जीवित रखना चाहते हैं, तो मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए। माता तिष्यरक्षिता को मुक्त कर दीजिए।

अशोक—पुत्र ! मैं वृद्ध हूँ। तुम्हारा वियोग सहन नहीं कर सकता।

कुणाल—तो मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए।

अशोक—(सोचकर, विवशता से) तथास्तु।

कुणाल—(सहर्ष) चाण्डालो ! हट जाओ। माता ! निर्भय हो जाओ।

(चाण्डाल हट जाते हैं)

तिष्यरक्षिता—(नम्रभाव से) कुमार ! मैं घोर अपराधिनी हूँ। तुमने मुझ पर दया दिखाई है। मेरे शुष्क हृदय में दया-भाव का स्रोत बहाया है। मैंने सारे जीवन में जो शिक्षा ग्रहण न की थी वह आज पा ली। धन्य हो तुम ! धन्य है तुम्हारी पवित्र आत्मा ! मुझे क्षमा करो। (चरण-स्पर्श करती है)

कुणाल—(हाथ हटाकर) माता ! यह क्या ? आप अब पिछली बातें भूल जायँ।

[कोलाहल सुनाई देता है; काञ्चनमाला का प्रवेश]

काञ्चनमाला—(सारथी से) सारथी ! शीघ्र रथ ले चलो। मैं स्वामिदेव के लिए चिन्तित हूँ। वे जन्तु-गृह पहुँच गये होंगे।

(सारथी रथ को वेग से दौड़ाता है)

काञ्चनमाला—(पास आकर रथ से उतरती है। कुणाल को देखकर) स्वामिदेव !

कुणाल—पिताजी ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। आनन्द-मङ्गल मनाओ।

काञ्चनमाला—(सहर्ष) यह बड़ा शुभ अवसर है।

तिष्यरक्षिता—(दीन भाव से) काञ्चनमाला ! मेरा अपराध क्षमा करो। मैं अज्ञानवश भ्रम-जाल में फँस रही थी।

काञ्चनमाला—माताजी ! आप इसकी कुछ चिन्ता न करें। सारा संसार ही भ्रम-जाल में फँसा हुआ है।

तिष्यरक्षिता—अब मेरे अज्ञान का आवरण दूर हो गया। मुझे अपनी करनी पर पश्चात्ताप हो रहा है। मैं पापिनी हूँ। भगवान् सुगत मुझे सद्‌बुद्धि दें। (हाथ जोड़कर, आकाश की ओर देखती हुई) भगवान् सुगत ! आपने आम्रपाली जैसी नारी का उद्धार किया था। क्या मेरे ऊपर दया-दृष्टि न कीजिएगा ? आपने क्षुधा से पीड़ित पुरुष के लिए अपने आपको शशि-रूप में जलती हुई आग में फेंक दिया था। आपने कई वार घोषणा की है कि 'जो कोई मुझसे मनोरथ-

पूर्ति की इच्छा करेगा, उसके प्रदान करने में मैं तनिक विलम्ब न करूँगा'। अतएव आप मेरा भी मनोरथ पूर्ण करें। भगवान् सक्क! आप ही मेरी प्रार्थना स्वीकार करें। आपने राजा सिबि के नेत्र पुनः प्रकट कर दिये थे। क्या कुमार कुणाल पर आप कृपा न करेंगे? आपसे मैं यही भिक्षा माँगती हूँ कि कुमार को नेत्र प्राप्त हो जायँ।

[महात्मा यश का भिक्षुओं सहित प्रवेश,
सब यथोचित सत्कार करते हैं]

अशोक—महात्माजी! मेरे ऊपर आपकी सदा कृपा-दृष्टि रहती है। आज मेरा मनोरथ पूर्ण करके मुझे शान्त कीजिए। मेरे प्रिय कुमार को दृष्टि प्रदान कर हम पर अनुग्रह कीजिए।

यश—सम्राट् अशोक! मुझे आपका मनोरथ पहले से ही विदित है। मेरी स्वयं यही अभिलाषा है। इसी लिए मैं यहाँ आया हूँ। आपको स्मरण होगा, मैंने एक बार आपको सम्मति दी थी कि कुमार कुणाल को राज-कार्य का अभ्यास कराइए।

अशोक—(सोचकर) हाँ, मुझे स्मरण है।

यश—उस दिन मेरे मन में सहसा एक ऐसा विचार उत्पन्न हुआ, जिससे मैंने समझा कि कुमार के नेत्र शीघ्र नष्ट हो जायँगे। तब मैंने कुमार से कहा भी था कि नेत्र अनित्य

हैं, चञ्चल हैं, सहस्रों दुःखों के वासस्थान हैं। मैंने तब से कुमार के कल्याण के लिए सदैव प्रार्थना की है। भगवान् बुद्ध ने मुझे दर्शन देकर कहा है—"कुमार की कुछ चिन्ता मत करो। उसका हित हमारे हाथ है।" अतएव उनके वचन पर विश्वास रखो। कल्याण होगा।

अशोक—हमें भगवान् के वचनों पर पूर्ण विश्वास है। आप पर पूर्ण श्रद्धा है। आपकी कृपा से हमारी सब अभिलाषाएँ सफल होती हैं।

(आकाश से पुष्प-वृष्टि होती है। सब विस्मित हो जाते हैं। कुमार अपने सिर पर कुछ गिरता देखकर टटोलते हैं, और कुछ पुष्प लेकर सूँघते हैं)

कुणाल—(सानन्द) कैसी सुगन्ध है! पुष्प कितने कोमल हैं। इनके स्पर्श से आँखें कितनी शीतल हो जायँगी! (कुमार आँखों पर पुष्पों को लगाते हैं, नेत्र-ज्योति प्रकट हो जाती है। साश्चर्य, गुरु-जनों को देखकर) आज गुरु-जनों के दर्शन पाकर मेरा हृदय पुलकित हो गया।

दर्शकजन—(कुमार को दृष्टि प्राप्त होते देखकर) धन्य हो भगवन्! धन्य हो!

यश—भगवान् की महिमा अपरम्पार है।

अशोक—भगवान् अपने भक्तों की परीक्षा लेते हैं। मैं धन्य हूँ कि मेरा पुत्र देव-परीक्षा में सफल हुआ। आओ पुत्र! मेरे हृदय को शान्त करो।

(कुमार का आलिङ्गन करते हैं। इसके पश्चात् कुमार सब गुरु-जनों को प्रणाम करते और आशीर्वाद पाते हैं)

यश—कुमार कुणाल ! तुम्हारा यह उच्च आदर्श स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। तुम्हारा जीवन जनता के लिए एक उत्तम पथ-प्रदर्शक होगा। तुम्हारी धवल यश-पताका सदैव फह-राती रहेगी। नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय।

[पटाक्षेप

— —